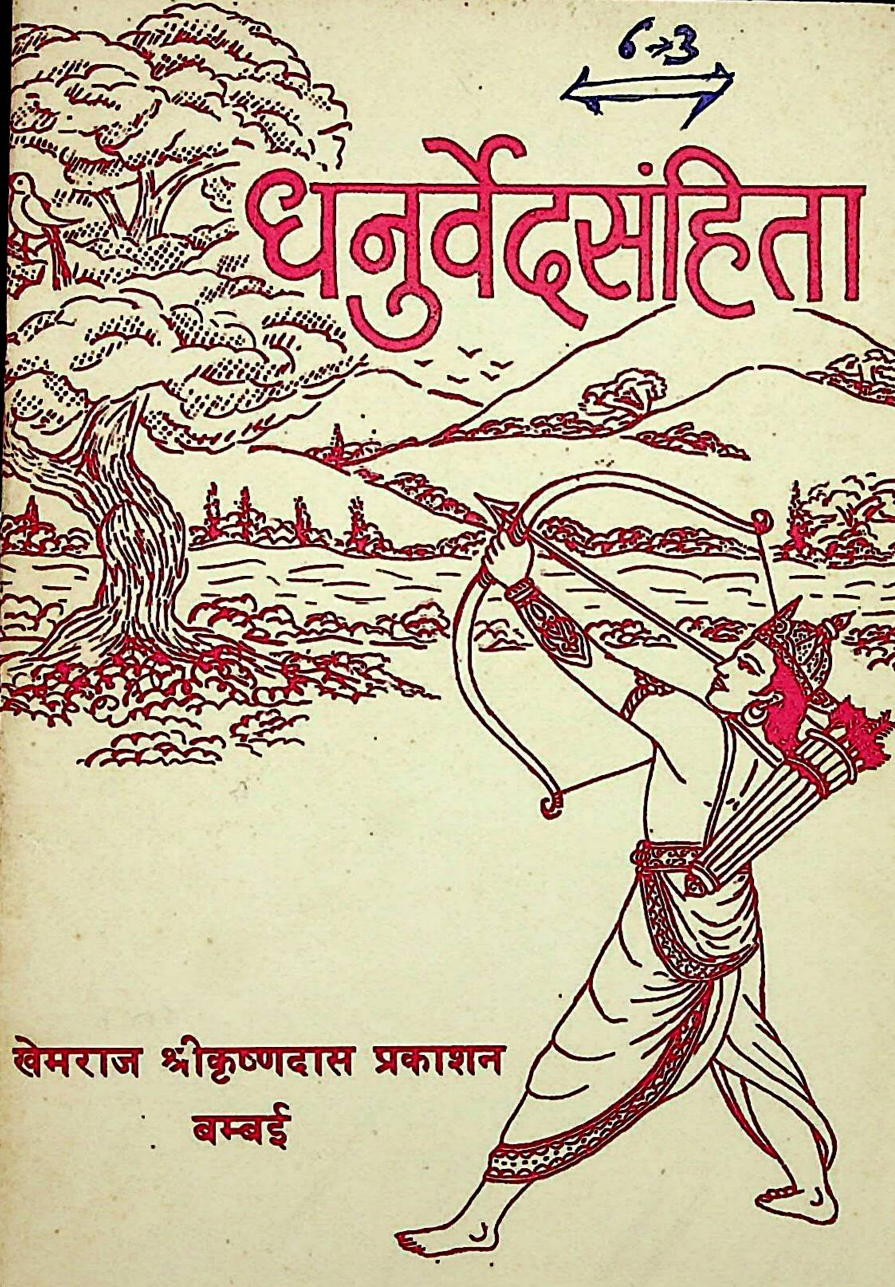
धनुर्वेदसंहिता



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई

श्रीमद्वसिष्ठमहर्षिप्रणीता

धनुर्वेदसंहिता

पं० हरदयालु स्वामिविरचितहिन्दीटीकासमेता

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई

संस्करण-सन् १९९०, संवत् २०४७

मूल्य १५ रुपये मात्र

मुद्रक और प्रकाशक-
मे० खेमराज श्रीकृष्णदास, अध्यक्ष-श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई-४, के लिये
दे० स० शर्मा, मेनेजर, द्वारा श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, खेतवाड़ी, बम्बई-४ में मुद्रित।

भूमिका

समर्पण कर दिया।

पाठकगण! यह **'वासिष्ठी धनुर्वेदसंहिता'** मूलमात्र मुझको इलाका जयपुर के सनथला बनथली कोढ़ा के मोलकराम ब्राह्मण के पास से लिखने को संवत् १९३३ में चुरू रामगढ़ में मिली जब से यह धरी थी। अब एक प्रति खड्गविलासयंत्रालय की छपी हुई देखने में आई तथा १ पुस्तक अलीगढ़ के जिले में छपी। इसको देखकर हमने भी अपनी पुस्तक पण्डित ईश्वरीप्रसादजी पाण्डे को दिखाई। इनकी आज्ञानुसार इसकी भाषा अति परिश्रम करके बनाई। परिश्रम का फल यथाशक्ति पण्डितजी से पाया। अब इस पुस्तक का सर्वाधिकार श्रीमान् खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाधिप को समर्पण कर दिया।

पण्डित हरदयालु स्वामी,

ग्राम कंबाली निवासी रिवाडी-गुडगांव.

धनुर्वेदसंहितास्थविषानुक्रमणिका

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता

ॐ साम्बसदाशिवाय नमः

अथ वासिष्ठीधनुर्वेदसंहिताप्रारम्भः

अथैकदा विजिगीषुर्विश्वामित्रो राजर्षिर्गुरुं वसिष्ठमभ्युपेत्य प्रणम्योवाच ब्रूहि भगवन् धनुर्विद्यां श्रोत्रियाय दृढचेतसे शिष्याय दुष्टशत्रुविनाशाय च । तमुवाच महर्षिब्रह्मर्षिप्रवरो वसिष्ठः शृणु भो राजन्विश्वामित्र यां सरहस्यधनुर्विद्यां भगवान्सदाशिवः परशुरामायोवाच तामेव सरहस्यां वच्मि ते हिताय गोब्राह्मणसाधुवेदरक्षणाय च यजुर्वेदाथर्वसम्मितां संहिताम् ।।

एक समय विजय के आकांक्षी राजर्षि विश्वामित्र वसिष्ठ गुरुजी के पास जाकर प्रणाम कर बोले, हे भगवन्! श्रोत्रिय, दृढ़चित्त, मुझशिष्य को दुष्ट स्वभाव वाले शत्रुओं का नाश करने के लिए धनुर्विद्या कहिए। महर्षिब्रह्मऋषियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी बोले कि हे राजन् विश्वामित्र! सुनिए, जिस सरहस्य धनुर्वेदविद्या को भगवान् महादेवजी ने परशुरामजी को कहा था। उसी यजुर्वेद और अथर्ववेद से मिली हुई रहस्य सहित धनुर्विद्या को मैं आपसे गौ, ब्राह्मण, वेद और साधुओं की रक्षा के लिये कहता हूँ।।

अथोवाच महादेवो भार्गवाय च धीमते ।
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन संशृणु ।।१।।

महादेवजी ने बुद्धिमान् परशुरामजी से जो कहा था। ठीक वही मैं आपसे कहता हूँ, सुनिये।।१।।

तत्र चतुष्टयपादात्मको धनुर्वेदः यस्य प्रथमे पादे दीक्षा-प्रकारः । द्वितीये संग्रहः । तृतीये सिद्धप्रयोगाः । चतुर्थे प्रयोगविधयः ॥२॥

महादेवजी के कहे हुए धनुर्वेद में चार पाद हैं। पहिले पाद में धनुर्वेद की दीक्षा (उपदेश) की विधि है। दूसरे पाद में अभ्यास करने की विधि है। तीसरे में प्रक्षेपणादि प्रकार हैं। चौथे पाद में अस्त्रसंधानादि प्रयोग विधि हैं॥२॥

अथ कस्य धनुर्वेदाधिकारः इत्यपेक्षायामाह

धनुर्वेदगुरुर्विप्रः प्रोक्तो वर्णद्वयस्य च ।
युद्धाधिकारः शूद्रस्य स्वयं व्यापादिशिक्षया ॥३॥

धनुर्वेद सिखाने में ब्राह्मण तो गुरु होता है और धनुर्वेद से युद्ध का अधिकार दो ही वर्णों के लिये कहा है, शूद्र को तो अपने आप ही शिकार आदि करने का अधिकार है॥३॥

चतुर्विधमायुधम् । मुक्तममुक्तं मुक्तामुक्तं यन्त्रमुक्तं चेति ॥४॥

मुक्त अर्थात् चक्र आदि जो हाथ से छोड़े जायँ उनको अस्त्र कहते हैं। अमुक्त खड्ग आदि। मुक्ताऽमुक्त बरछी आदि। यन्त्रमुक्त शर, गोली आदि। ये चार प्रकार के आयुध कहलाते हैं॥४॥

दुष्टदस्युचौरादिभ्यः साधुसंरक्षणं धर्मतः ।
प्रजापालनं धनुर्वेदस्य प्रयोजनम् ॥५॥

बुरे मनुष्य डाकू चोर आदिकों से श्रेष्ठों की रक्षा करना, धर्म से प्रजा का पालन करना, यही धनुर्वेद का प्रयोजन है॥५॥

एकोऽपि यत्र नगरे प्रसिद्धः स्याद्धनुर्धरः ।
ततो यान्त्यरयो दूरान्मृगाः सिंहगृहादिव ॥६॥

जिस नगर में एक भी प्रसिद्ध धनुर्धारी हो उस नगर से शत्रु दूर ही चले जाते हैं जैसे सिंह के घर से अरण्य पशु दूर चले जाते हैं॥६॥

अथ धनुर्दानविधिः

आचार्येण धनुर्देयं ब्राह्मणे सुपरीक्षिते ।
लुब्धे धूर्ते कृतघ्ने च मन्दबुद्धौ न दापयेत् ॥७॥

धनुर्विद्या देने की विधि यह है कि, आचार्य को चाहिये कि अच्छी परीक्षा किये हुए ब्राह्मण को धनुर्विद्या दें। लोभी और धूर्त, जो दी हुई विद्या का अहसान न माने ऐसे पुरुष को तथा मन्दबुद्धि को धनुर्विद्या न दे॥७॥

ब्राह्मणाय धनुर्देयं खड्गं वै क्षत्रियाय च ।
वैश्याय दापयेत्कुन्तं गदां शूद्राय दापयेत् ॥८॥

ब्राह्मण को धनुष दे, क्षत्रिय को तलवार, वैश्य को भाला और शूद्र को गदायुद्ध सिखावे॥८॥

धनुश्चक्रं च कुन्तं च खड्गं च क्षुरिका गदा ।
सप्तमं बाहुयुद्धं स्यादेवं युद्धानि सप्तधा ॥९॥

धनुष १ चक्र २ भाला ३ खड्ग ४ छुरी ५ गदा ६ सातवां हाथों से मल्ल युद्ध इस प्रकार से सात प्रकार का युद्ध है॥९॥

अथाचार्यलक्षणम्

आचार्यः सप्तयुद्धः स्याच्चतुर्भिर्भार्गवः स्मृतः ।
द्वाभ्यां चैव भवेद्योद्धा एकेन गणको भवेत् ॥१०॥

अब आचार्य के लक्षण कहते हैं। जो सातों प्रकारके युद्ध जानता है वह आचार्य होता है। जो चार प्रकारके युद्ध जाने, वह भार्गव कहलाता है। दो प्रकारके युद्ध को जानने वाला योद्धा होता है, और एक प्रकारके युद्ध से गणकसंज्ञा वाला होता है॥१०॥

हस्तः पुनर्वसुः पुष्यो रोहिणी चोत्तरात्रयम् ।
अनुराधाश्विनी चैव रेवती दशमी तथा ॥११॥

धनुर्विद्या का मुहूर्त हस्त, पुनर्वसु, पुष्य, रोहिणी, और तीनों उत्तरा, अनुराधा, अश्विनी और दशवीं रेवती॥११॥

जन्मस्थे च तृतीये च षष्ठे वै सप्तमे तथा ।
दशमैकादशे चन्द्रे सर्वकार्याणि कारयेत् ॥१२॥

प्रथम, तीसरे, छठे, सातवें, दशवें, ग्यारहवें चन्द्रमा में आचार्य धनुर्विद्या के सारे काम करवावे।।१२।।

तृतीया पंचमी चैव सप्तमी दशमी तथा ।
त्रयोदशी द्वादशी च तिथयस्तु शुभा मताः ।।१३।।

तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी और द्वादशी ये तिथियां शुभ हैं।।१३।।

रविवारः शुक्रवारो गुरुवारस्तथैव च ।
एतद्वारत्रयं धन्यं प्रारम्भे शस्त्रकर्मणाम् ।।१४।।

रवि, शुक्र, गुरु, शस्त्रों के प्रारम्भ कर्म में ये तीन वार सराहने योग्य हैं।।१४।।

एभिर्दिनैस्तु शिष्याय गुरुः शस्त्राणि दापयेत् ।
संतर्प्य दानहोमाभ्यां सुरान्स्वाहाविधानतः ।।१५।।

गुरु इन दिनों में दान और होम करके देवताओं को तृप्त कर शिष्य को शस्त्र दे।।१५।।

ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र कुमारीश्चाप्यनेकशः ।
तापसानर्चयेद्भक्त्या ये चान्ये शिवयोगिनः ।।१६।।

वहां अनेक ब्राह्मण और कन्याओं को जिमावे और जो शिव के भक्त योगी हों उनको भक्ति से अर्चन पूजन करै।।१६।।

अन्नपानादिभिश्चैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
गन्धमाल्यैर्विचित्रैश्च गुरुं तत्र प्रपूजयेत् ।।१७।।

पीछे गन्ध माला अन्नादि वस्त्र गहने आदि से गुरुजी का पूजन करे।।१७।।

कृतोपवासः शिष्यस्तु धृताजिनपरिग्रहः ।
बद्धांजलिपुटस्तत्र याचयेद्गुरुतो धनुः ।।१८।।

उपवास किया हुआ शिष्य मृगचर्म धारण किये हुए हाथ जोड़कर गुरु से धनुष की याचना करे।।१८।।

अङ्गन्यासस्ततः कार्यः शिवोक्तः सिद्धिमिच्छता ।
आचार्येण च शिष्यस्य पापघ्नो विघ्ननाशनः ।।१९।।

फिर आचार्य को शिष्य की सिद्धि की इच्छा से शिवजी का कहा हुआ पाप और विघ्नों का नाश करनेवाला अङ्गन्यास करना चाहिये।।१९।।

शिखास्थाने न्यसेदीशं बाहुयुग्मे च केशवम् ।
ब्रह्माणं नाभिमध्ये तु जङ्घयोश्च गणाधिपम् ।।२०।।

चोटी के स्थान पर जहाँ ब्रह्मरन्ध्र है वहाँ श्रीमहादेवजी को स्थापन करे और दोनों बाहुओं पर भगवान् को और नाभि के बीच में ब्रह्माजी और जंघाओं पर गणेशजी को स्थापन करे।।२०।।

ॐ ह्रौं शिखास्थाने शंकराय नमः ।
ॐ ह्रौं बाह्वोः केशवाय नमः ।
ॐ ह्रौं नाभिमध्ये ब्रह्मणे नमः ।
ॐ ह्रौं जङ्घयोर्गणपतये नमः ।।२१।।

इन पूर्वोक्त चार मंत्रों से चारों देवताओं का ध्यान करता जाय और शिखादि को हाथ से छूता जाय।।२१।।

ईदृशं कारयेन्न्यासं येन श्रेयो भविष्यति ।
अन्येऽपि दुष्टमंत्रेण न हिंसन्ति कदाचन ।।२२।।

इस प्रकार अङ्गन्यास करावे और शिष्य करे, जिससे कल्याण हो। इस न्यास के करने से और भी मारण आदि दुष्ट मंत्रों से नहीं मार सकते।।२२।।

शिष्याय मानुषं चापं धनुर्मंत्राभिमंत्रितम् ।
काण्डात्काण्डाभिमंत्रेण दद्याद्वेदविधानतः ।।२३।।

गुरु शिष्य को "काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ति परुषः परुषः परि" इस वेद के मंत्र से वेदविधि के साथ मनुष्य सम्बन्धी धनुष को धनुष के मंत्र से मन्त्रित करके दे।।२३।।

प्रथमं पुष्पवेधं च फलहीनेन पत्रिणा ।
ततः फलयुतेनैव मत्स्यवेधं च कारयेत् ।।२४।।
मांसवेधं ततः कुर्यादेवं वेधो भवेत्त्रिधा ।
एतैर्विधैः कृतैः पुंसां शराः स्युः सर्वसाधकाः ।।२५।।

इसके उपरान्त पहिले फूल के ऊपर फल रहित बाण से वेध करावे पश्चात् फल सहित बाण से मत्स्य का छेदन करावे, इसके उपरान्त मांस पर निशाना लगवावे, हे विश्वामित्र! इस प्रकार से तीन प्रकार का वेध होता है इन वेधों के करने पर सर्वसाधक बाण हो जाते हैं, अर्थात् सब प्रकार का निशाना आ जाता है और सब वस्तुओं को वेध सकता है।।२४-२५।।

वेधने चैव मांसस्य शरपातो यदा भवेत् ।
पूर्वदिग्भागमाश्रित्य तदा स्याद्विजयी सुखी ।।२६।।
दक्षिणे कलहो घोरो विदेशगमनं पुनः ।
पश्चिमे धनधान्यं च सर्वं चैवोत्तरे शुभम् ।।२७।।
ऐशान्यां पवनं दुष्टं विदिशोऽन्याश्च शोभनाः ।
हर्षपुष्टिकराश्चैव सिद्धिदाः सर्वकर्मणि ।।२८।।

अब वेध का शकुन कहते हैं, यदि मांस का वेध करते समय, वा शमी पूजा में पुतला वेध करते समय वेधन होकर बाण पूर्व दिशा में गिर पड़े तो उस योद्धा की विजय हो और सुख हो, दक्षिण दिशा में गिरे तो बहुत क्लेश हो और परदेश में गमन हो, पश्चिम में बाण गिरे तो धन और धान्य मिले और उत्तर में गिरे तो सब काम उत्तम हों, ईशान में बाण गिरे तो बुरा वायु चले और सारी विदिशा श्रेष्ठ हैं, आनन्द और पुष्टिकी करने वाली और सब कामों में सिद्धि देने वाली हैं।।२६-२८।।

एवं वेधत्रयं कुर्याच्छङ्खदुंदुभिनिस्वनैः ।
ततः प्रणम्य गुरवे धनुर्बाणान्निवेदयेत् ।।२९।।

ऐसे वेधत्रय करै, शंख और नगारों के शब्द के साथ, पीछे गुरु को प्रमाण करके धनुष और बाण उनके आगे रख दे फिर उनको गुरुदक्षिणा देकर धनुष बाण ले ले।।२९।।

इति धनुर्दानविधिः

अथ चापप्रमाणम्

प्रथमं योगिकं चापं युद्धचापं द्वितीयकम् ।
निजबाहुबलोन्मानात्किंचिदूनं शुभं धनुः ॥३०॥

अब धनुष का प्रमाण कहते हैं, पहिले तो अभ्यास करने के लिये (योगिक) धनुष अर्थात् लेजम आदि जिससे बाहुबल बँधे और साधारण धनुष से निशाना आदि सीखना चाहिये, जैसे गुलेल आदि, फिर दूसरा सींग आदि का (युद्धचाप) अपने हाथों के बल के अनुमान से कुछ छोटा धनुष धारण करना श्रेष्ठ है॥३०॥

वरं प्राणाधिको धन्वी न तु प्राणाधिकं धनुः ।
धनुषा पीडचमानस्तु धन्वी लक्ष्यं न पश्यति ॥३१॥

प्राणों से भी प्यारा धनुषधारी होता है, प्राणों से अधिक धनुष नहीं है, इस कारण ऐसे बल का धनुष धारण करे कि, जिससे सुखपूर्वक बाण फेंकता रहे, ऐसा बोझिल धनुष न धारण करे कि जिससे छाती फट जाय। क्योंकि धनुष से पीड़ित धनुषधारी लक्ष्य को भली भाँति नही ताक सकता, उसके खैंचने और भार उठाने की चिन्ता में ही लगा रहकर हार जाता है॥३१॥

अतो निजबलोन्मानं चापं स्याच्छुभकारकम् ।
देवानामुत्तमं चापं ततो न्यूनं च मानवम् ॥३२॥

इसलिये अपने बल के अनुमान चाप शुभकारक है, देवताओं का चाप उत्तम होता है, उससे छोटा मनुष्यों का॥३२॥

अर्द्धपञ्चमहस्तं तु श्रेष्ठं चापं प्रकीर्तितम् ।
तद्विज्ञेयं धनुर्दिव्यं शंकरेण धृतं पुरा ॥३३॥

साढ़े पांच हाथ का चाप श्रेष्ठ कहा है, उसको दिव्य धनुष जानना जो पहले श्रीमहादेवजी ने धारण किया था॥३३॥

चतुर्विंशांगुलो हस्तश्चतुर्हस्तं धनुः स्मृतम् ।
तद्भवेन्मानवे चापं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥३४॥

चौबीस अंगुलों का एक हाथ होता है और चार हाथों का एक धनुष कहा है, वही सारे लक्षणों सहित मनुष्यों का धनुष होता है॥३४॥

अथ शुभचापलक्षणम्

त्रिपर्वं पंचपर्वं वा सप्तपर्वं तथा पुनः ।
नवपर्वं च कोदण्डं सर्वदा शुभकारकम् ॥३५॥

श्रेष्ठ धनुष के लक्षण, तीन पोरी वा पांच पोरी और फिर सात पोरी नव पोरी का धनुष सदा शुभकारक है॥३५॥

चतुष्पर्वं च षट्पर्वमष्टपर्वं विवर्जयेत् ॥३६॥

चार पोरी छः पोरी और आठ पोरियों का धनुष वर्जित है॥३६॥

केषांचिच्च भवेच्चापं वितस्तिनवसंमितम् ॥३७॥

कितने ही के मत में ९ नौ बालिश्त का धनुष होता है॥३७॥

अथ वर्जितधनुः

अतिजीर्णमपक्वं च ज्ञातिधृष्टं तथैव च ।
दग्धं छिद्रं न कर्तव्यं बाह्याभ्यंतरहस्तकम् ॥३८॥
गुणहीनं गुणाक्रान्तं काण्डदोषसमन्वितम् ।
गलग्रन्थि न कर्तव्यं तलमध्ये तथैव च ॥३९॥

वर्जित धनुष को न धारण करे, बहुत पुराना कच्चा और जो जाति के बाँस का न हो, जला हुआ और छेद वाला बींधा हुआ और जिसके खेंचने से हाथ बाहर चला जाय अथवा भीतर रह जाय, गुणरहित और गुणसे ढका हुआ अर्थात् बहुत मोटी चौड़ी गुणसे ढका हुआ काण्डदोषके साथ अर्थात् अच्छे स्थान में उत्पन्न हुए बांस का न हो जिसके गले में गांठ हो और वैसे ही जिसके तले में गांठ हो ऐसा धनुष वर्जित है॥३८-३९॥

अपक्वं भङ्गमायाति ह्यतिजीर्णं तु कर्कशम् ।
ज्ञातिधृष्टं तु सोद्वेगं कलहो बांधवैः सह ॥४०॥
दग्धेन दह्यते वेश्म छिद्रं युद्धविनाशनम् ।
बाह्ये लक्ष्यं न लभ्येत तथैवाभ्यन्तरेपि च ॥४१॥
हीने तु संधिते बाणे संग्रामे भङ्गकारकम् ।
आक्रान्ते तु पुनः क्वापि लक्ष्यं न प्राप्यते दृढम् ॥४२॥

गलग्रन्थि तलग्रन्थि धनहानिकरं धनुः ।।
एभिर्दोषैर्विनिर्मुक्तं सर्वकार्यकरं स्मृतम् ।।४३।।

विना पके बांस वा सींग, सोना, चांदी, तांबा, लोहा इस्पात आदि का धनुष टूट जाता है, इसलिये पहिले अजमाया हुआ धनुष न हो तो भंग हो जाता है और बहुत पुराना तो कैड़ा हो जाता है और जाति के बांस का न हो तो मन में युद्ध के समय उद्वेग करता है, अर्थात् मन को उलट पुलट कर देता है, और भाइयों के साथ लड़ाई, जले हुए धनुष के धारण करने से घर जल जाता है, छिद्र सहित से युद्ध का नाश हो जाता है, क्योंकि मन में यही चिन्ता लगी रहती कि, कभी टूट न जाय, युद्ध समय अन्य चिन्ता होने से शीघ्र बाण नहीं चल सकते इसलिये हार जाता है और जिस धनुष के बाहर हाथ चला जाय तो निशाना नहीं दीखे और वैसे ही भीतर हाथ रह जाय तो भी निशाना नहीं दीखे, यदि ओछा बाण चढ़ावे तो संग्राम में भंगकारक है और गुणा से टका हुआ हो तो फिर दृढ़ निशाना नहीं लगे और गलग्रंथि तथा तलग्रंथि ये दोनों धनुष धन की हानि करने वाले हैं, इन दोषों से रहित धनुष सब कामों का करने वाला होता है।।४०-४३।।

शार्ङ्गं पुनर्धनुर्दिव्यं विष्णोः परममायुधम् ।
वितस्तिसप्तमं मानं निर्मितं विश्वकर्मणा ।।४४।।

फिर विष्णु भगवान् का परम दिव्य आयुध शार्ङ्गधनुष विश्वकर्मा ने सात बालिश्त का बनाया।।४४।।

न स्वर्गे न च पाताले न भूमौ कस्यचित्करे ।
तद्धनुर्वशमायाति मुक्त्वैकं पुरुषोत्तमम् ।।४५।।

स्वर्ग में न पाताल में न पृथ्वीपर किसी के हाथ में वह है और न वह किसी के वश में आता है, एक भगवान् को छोड़कर।।४५।।

पौरुषेयं तु यच्छार्ङ्गं बहुवत्सरशोभितम् ।
वितस्तिभिः सार्द्धषड्भिर्निर्मितं चार्थसाधनम् ।।४६।।

एक पुरुष का जो धनुष है वह अच्छा बहुत वर्षों का है और छः बालिश्त और छः अंगुलका बनाया हुआ धनुष धनका साधन देने वाला है॥४६।

प्रायो योज्यं धनुःशार्ङ्गं गजारोहाश्वसादिनाम् ।
रथिनां च पदातीनां वांशं चापं प्रकीर्त्तितम् ॥४७॥

बहुत करके शार्ङ्ग धनुष हाथी के सवार और घोड़ों के सवारों को धारण करना चाहिये, रथियों और पैदलों को बांस का चाप धारण करना योग्य है॥४७॥

विश्वामित्र शृणुष्वाथ धनुर्द्रव्यत्रयं क्रमात् ।
लोहं शृंगं च काष्ठं च गदितं शंभुना पुरा ॥४८॥

हे विश्वामित्र! अब धनुष के तीन द्रव्य क्रम से सुनो, एक तो लोह, दूसरा सींग तीसरा काष्ठ का धनुष श्रीमहादेवजी ने कहे हैं॥४८॥

लोहानि स्वर्णरजतताम्रकृष्णायसानि । शृङ्गाणि महिषशरभरोहितानाम् । शरभोऽष्टपाच्चतुरूर्ध्वपादो महाविषाण उष्ट्रमितो वनस्थः काश्मीरदेशप्रसिद्धो मृगाख्यः । दारूणि चन्दनवेतसधान्वन शालशाल्मलि-साककुभवंशांजनानाम् ॥४९॥

लोह का अर्थ, सोना, चांदी, तांबा और कालालोहा इस्पात, सींग भैंस का शरभ (रोही) मृग का जिसके आठ पैर होते हैं चार ऊपर को चार नीचे और बड़े २ सींग होते हैं ऊँट के समान ऊँचा होता है वन में रहने वाला काश्मीर देश में उसको सब जानते हैं और काठ ये ग्रहण करने चंदन, वेत, धान्वन, शाल, सेमल, साक, ककुभ और बांस तथा अंजन वृक्ष इतनी वस्तुओं का धनुष बनता है॥४९॥

अथ गुणलक्षणानि

गुणानां लक्षणं वक्ष्ये यादृशं कारयेद्गुणम् । पट्टसूत्रो गुणः कार्यः कनिष्ठामानसंमितः ॥५०॥ धनुःप्रमाणो निःसंधिः शुद्धैस्त्रिगुणतन्तुभिः । वर्तितः स्याद्गुणः श्लक्ष्णः सर्व-कर्मसहो युधि ॥५१॥ अभावे पट्टसूत्रस्य हरिणीस्नायु-रिष्यते । गुणाथमाप च ग्राह्याः स्नायवो महिषीभवाः

॥५२॥ तत्कालहतच्छागस्य तन्तुना वा गुणाः शुभाः । निर्लोमतन्तुसूत्रेण कुयाद्वा गुणमुत्तमम् ॥५३॥ पक्ववंशत्वचः कार्यो गुणस्तु स्थावरो दृढः । पट्टसूत्रेण सन्नद्धः सर्वकर्मसहो युधि ॥५४॥ प्राप्ते भाद्रपदे मासि त्वगर्कस्य प्रशस्यते । तस्यास्तत्र गुणः कार्यो नवित्रः स्थावरो दृढः ॥५५॥गुणाः कार्याः सुमुञ्जानां भंगस्नाय्वर्कवर्मिणाम् ।

अब गुणों के लक्षण कहते हैं हे विश्वामित्र! अब जैसी गुण करनी चाहिये उस गुण के लक्षण कहते हैं रेशम के सूतकी गुण करनी चाहिये छोटी अंगुली के समान मोटी धनुष के प्रमाण के अनुपान से स्वच्छ साफ किये तिहरा डोरों को बांटकर चिकनी गुणा बनाई हुई युद्ध में सब कामों को सहने वाली होती है चाहे उसको कितनी ही खैंचो टूटती नहीं यदि रेशम की डोरी न मिले तो हिरन की स्नायु नाड़ियों की तांत गुण के लिये लेले वा भैंस की आंतों की तांत ले अथवा उसी समय मारे हुए बकरे की तांत की गुण श्रेष्ठ होती है, रोम रहित तांत के सूत से गुण उत्तम बनती है, अथवा पके हुए बांस की छाल की दृढ़ गुण करे रेशम के सूत से बनी हुई गुण युद्ध में सब काम देती है, भादों का महीना आने पर आक की त्वचा भी गुण का काम दे सकती है, उसका वहां तथा सूत बांटकर गुंण करे और क्षत्रियों को कपास मूंज भंग नाड़ी आक आदि की बनानी चाहिये॥५०-५५॥

अथ शरलक्षणानि

अतः परं प्रवक्ष्यामि शराणां लक्षणं शुभम् ।
स्थूलं न चापि सूक्ष्मं च नापक्वं न कुभूमिजम् ॥५६॥

अब बाणों के लक्षण कहते हैं इससे आगे बाणों के शुभ लक्षण कहते हैं, न मोटे न पतले न कच्चे और न खोटी भूमि के उत्पन्न हुए सरकंडे ग्रहण करे॥५६॥

हीनग्रंथिविदीर्णं च वर्जयेदीदृशं शरम् ।
पूर्णग्रंथिसुपक्वं च पाण्डुरं समयाहृतम् ॥५७॥

हीन गांठवाला कुवला हुआ हो तो ऐसा शर नहीं ले पूरी गांठवाला अच्छा पका हुआ पीले रंग का समय पर ले॥५७॥

शरवंशा गृहीतव्या शरत्काले च गाधिज ॥५८॥

हे गाधिके पुत्र विश्वामित्र! वृश्चिक राशि के सूर्य मार्गशीर्ष में शर के बांस बाण बनाने को लेनी चाहिये॥५८॥

कठिनं वर्तुलं काण्डं गृह्णीयात्सुप्रदेशजम् ।
द्वौ हस्तौ मुष्टिहीनौ च दैर्घ्ये स्थौल्येकनिष्ठिका॥५९॥

कैड़े गोल अच्छे देश में उत्पन्न हुए शर लेवे, एक बाण दो हाथ लंबा हो, एक मुट्ठी कम अर्थात् पांच अंगुल न्यून दो हाथ लंबा एक बाण हो और कनिष्ठा (छोटी) अंगुली सा मोटा हो॥५९॥

विधेया शरमानेषु यत्नेष्वाकर्षयेत्ततः ।

इतने अनुमान के बाण बनावे पीछे यंत्र अर्थात् धनुष पर चढ़ावे॥

काकहंसशशादानां मत्स्यादक्रौंचकेकिनाम् ।
गृध्राणां कुरराणां च पक्षा एते सुशोभनाः ॥६०॥

कौवे, हंस, शशाद, बगुले, क्रौंचपक्षी, मोर, गीध, टटीहरी इनके पर बाण के बांधने में श्रेष्ठ हैं॥६०॥

षडंगुलप्रमाणेन पक्षच्छेदं च कारयेत् ।
दशांगुलमिताः पक्षाः शार्ङ्गचापस्य मार्गणे ॥६१॥
योज्या दृढाश्चतुःसंख्याः सन्नद्धाः स्नायुतन्तुभिः ।

छः अंगुल के मान परों को काटे और शार्ङ्गधनुष पर चढ़ाने के बाण के लिये दश २ अंगुल के पर चार २ प्रत्येक बाण के खड़े तांत के तारों से बांधे॥६१॥ जैसे :-

शरश्च त्रिविधो ज्ञेयः स्त्री पुमाँश्च नपुंसकः ॥६२॥
अग्रस्थूलो भवेन्नारी पश्चात्स्थूलो भवेत्पुमान् ॥
समो नपुंसको ज्ञेयस्तल्लक्ष्यार्थे प्रशस्यते ॥
दूरपातो युवत्या च पुरुषो भेदयेद्दृढम् ॥६३॥

तीन प्रकारके बाण जानने चाहिये स्त्री पुरुष और नपुंसक जो आगे से भारी हो वह स्त्री बाण कहाता है, और पीछे जो भारी हो वह पुरुष,

और जो एकसार हो वह नपुंसक होता है वह नपुंसक बाण केवल निशाना सीखने के लिये ही है और जो स्त्री बाण आगे से भारी होता है, वह दूर जाकर मारता है, और जो पुरुष बाण होता है, वह दृढ़ अर्थात् (मजबूत) पदार्थ को भी छेद देता है और काट देता है॥६२-६३॥

अथ फललक्षणम्

आरामुखं क्षुरप्रं च गोपुच्छं चार्द्धचन्द्रकम् ॥
सूचीमुखं च भल्लं च वत्सदंतं द्विभल्लकम् ॥६४॥
कर्णिकं काकतुण्डं च तथान्यान्यप्यनेकशः ।
फलानि देशभेदेन भवन्ति बहुरूपतः ॥६५॥

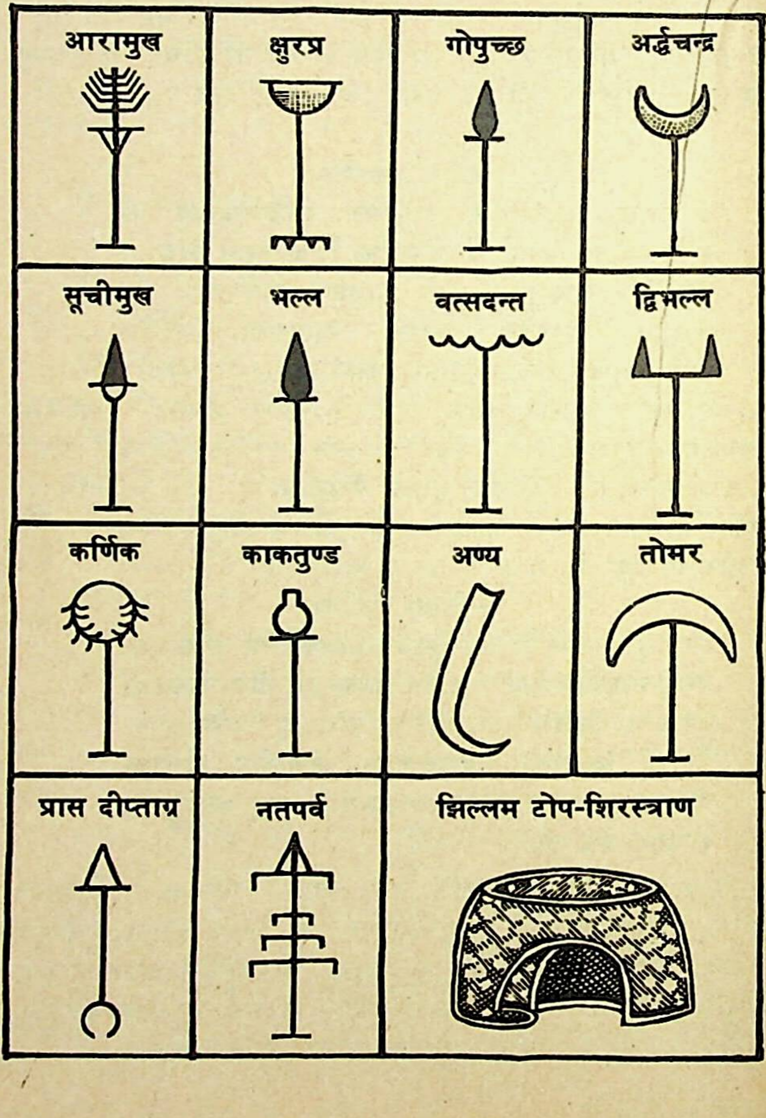
अब फल के लक्षण यह हैं, आरीकेसा मुखवाला १ खुरपेकासा २, गऊकी पूंछ के समान आकार वाला ३, आधे चांदक आकार ४, सुईकेसे मुखवाला ५ बरछड़ी के से मुखवाला ६, बछड़े के दांत के आकार वाला ७, दोभाल वाला ८ कर्णिक फूलकी पैंखडीसा ९, कौवे की चोंच के आकार वाला १० ये दश प्रकार आकार बाण के लोहे की भाल के होते हैं और भी देश भेद से अनेक प्रकार के होने हैं॥६४-६५॥

अथैतेषां कर्माणि

आरामुखेन चर्मच्छेदनम् क्षुरप्रेण बाणकर्तनम् वा बाहुकर्तनम् गोपुच्छेन लक्ष्यसाधनम् अर्धचन्द्रेण ग्रीवामस्तकधनुरादीनां छेदनम् सूचीमुखेन कवचभेदनम् भल्लेन हृदयभेदनम् वत्सदन्तेन गुणचर्वणम् द्विभल्लेन बाणावरोधनम् कर्णिकेन लोहमयबाणानां छेदनम् काकतुण्डेन वेध्यानां वेधं कुर्यात् ॥६६॥

आरामुख से ढालछेदन, क्षुरप्रसे हाथ काटना, गोपुच्छ से निशाना मारना, अर्द्धचन्द्र से माथा गरदन बाण काटना, धनुष काटना, सूचीमुख से बख्तर छेदन, भल्ल से हृदय को फोड़ना, वत्सदन्त से धनुष की गुण काटना, द्विभल्ल से बाण रोकना, कर्णिक से लोहे के बाण काटना, काकतुण्ड से वेधन के योग्यों को वेध विचार से करे॥६६॥

अथैषां स्वरूपाणि


आरामुख
क्षुरप्र
गोपुच्छ
अर्द्धचन्द्र
सूचीमुख
भल्ल
वत्सदन्त
द्विभल्ल
कर्णिक
काकतुण्ड
अण्य
तोमर
प्रास दीप्ताग्र
नतपर्व
झिल्लम टोप-शिरस्त्राण

अन्यद्गोपुच्छकं ज्ञेयं शुद्धकाष्ठविनिर्मितम् ।
मुखे च लोहकंटेन विद्धं त्र्यंगुलसंमितम् ॥६७॥

और गोपुच्छ बाण जानना शुद्ध काष्ठ का बना हुआ उसके मुख पर तीन अंगुल का लोह का कांटा विंधा हुआ होता है॥६७॥

बाणस्य फलकस्थाने (सेह) कंटकयोजनाद्गोपुच्छबाणो भवति । अनेन शराभ्यासस्तथा लक्ष्याभ्यासो वा कर्तव्यः ॥६८॥

बाण के फलक स्थान में (साई) का कांटा लगाकर गोपुच्छ बाण होता है, इससे निशाना और बाण फेंकने का अभ्यास करना चाहिये॥६८॥

अथ पायनम्

इषुफलशरवशामूललेपनाद्व्रणोऽसाध्यो भवति । तच्चिह्नमेतत् । यस्मिञ्छरवंशासमूहे स्वातिबिन्दुर्निपतति स पीतवर्णो भवति तस्य मूले विषमुत्पद्यते तन्मूलं ग्राह्यं स च सर्वदा पवनाभावेपि कम्पते इदमेव तल्लक्ष्मेति॥६९॥

अब फलों का पायन लिखते हैं, बाण के फल पर सरकण्डे की जड़ के लेप से घाव असाध्य होता है, उसकी पहिचान यह है कि, जिस झूँडे के समूह पर स्वाति की बूँद पड़ती हैं, वह पीले रंग का हो जाता है, उसकी जड़ में विष उत्पन्न होता है, वह जड़ लेनी चाहिये और वह सदा पवन भी न चलता हो तो भी कांपता रहता है, यही उसका चिह्न है॥६९॥

फलस्य पायनं वक्ष्ये दिव्यौषधिविलेपनैः ।
येन दुर्भेद्यवर्माणि भेदने तरुपर्णवत् ॥७०॥

फलों का पायन कहेंगे, दिव्य औषधियों के लेपन से जो किसी से भी न कटे, ऐसे कवचों को वृक्ष के पत्तों की तरह काट देवे॥७०॥

पिप्पली सैंधवं कुष्ठं गोमूत्रे तु सुपेषयेत् ॥
अनेन लेपयेच्छस्त्रं लिप्तं चाग्नौ प्रतापयेत् ॥७१॥
शिखिग्रीवानुवर्णाभं तप्तपीतं तथौषधम् ।

ततस्तु विमलं तोयं पाययेच्छस्त्रमुत्तमम् ॥७२॥

पीपल, सेंधानमक, कूठ, इन तीनों को गोमूत्र में अच्छी पीसे, फिर इससे शस्त्र को लीपे पीछे उसको अग्नि में तपावे, वह मोर की गरदन के सदृश नीला हो जाय तपाने से औषधि को पी जाय पीछे स्वच्छ जल में बुझा दे॥७१-७२॥

अथ नाराचनालीकशतघ्नीनां च वर्णनम् ।

सर्वलोहास्तु ये बाणा नाराचास्ते प्रकीर्तिताः ।

पञ्चभिः पृथुलैः पक्षैर्युक्ताः सिद्ध्यंति कस्यचित् ॥७३॥

अथ नाराच और नालीक और शतघ्नी का वर्णन करते हैं, जो बाण सब लोह के होते हैं वे नाराच कहे हैं, वे पांच मोटे पर बांधने से किसी को सिद्ध होते हैं॥७३॥

नालीका लघवो बाणा नलयंत्रेण नोदिताः ।

अत्युच्चदूरपातेषु दुर्गयुद्धेषु ते मताः ॥७४॥

जो कि नलयंत्र से फेंके जाते हैं, छोटे छोटे बाण कहाते हैं उनका नाम नालीक है अर्थात् गोली का नाम नालीक बाण हैं, और नलयंत्र नाम बन्दूक का है, सो बहुत ऊंचे और दूर फेंकने में तथा गढ़युद्ध में काम आते हैं ॥७४॥

सिंहासनस्य रक्षार्थं शतघ्नीः स्थापयेद्गढे ।

रंजकं बहुलं तत्र स्थाप्यं च बहु धीमता ॥७५॥

तख्तकी रक्षा के लिये गढ़ में तोपें स्थापन करे और बहुत सी बारूद और गोले गोली भी स्थापन करे॥७५॥

अथ स्थानमुष्ट्याकर्षणलक्षणम्

स्थानान्यष्टौ विधेयानि योजने भिन्नकर्मणाम् ।

मुष्ट्यः पंच समाख्याता व्यायाः पञ्च प्रकीर्तिताः ॥७६॥

इनके अनन्तर स्थान मुष्टि आकर्षण के लक्षण कहते हैं, अलग अलग काम में बाण प्रयोग करने के लिये स्थान आठ प्रकारके करने और पांच प्रकार की मुट्ठी कही है, तथा पांच प्रकार के व्याय कहे हैं॥७६॥

अग्रतो वामपादश्च दक्षिणे चानुकुञ्चितम् ।
प्रत्यालीढं प्रकर्तव्यं हस्तद्वयसविस्तरम् ॥७७॥

बायां पैर आगे और दाहिना पीछे सुकड़ा हुआ यह दो हाथ की प्रत्यालीढ गति कहाती है॥७७॥

आलीढे तु प्रकर्तव्यं सव्यं चैवानुकुञ्चितम् ।
दक्षिणन्तु पुरस्ताद्वा दूरपाते विशिष्यते ॥७८॥

आलीढ गति में धनुषधारी को बायां पैर सकोड़ना, और दाहिना आगे कर बाण फेंके तो बाण दूर जाय॥७८॥

पादौ सविस्तरौ कार्यौ समौ हस्तप्रमाणतः ।
विशाखस्थानकं ज्ञेयं कूटलक्ष्यस्य वेधने ॥७९॥

एक हाथ के प्रमाण से पैरों को विस्तार के साथ करे, उसका नाम विशाख गति है, कूटलक्ष्य के वेधने में इसका उपयोग होता है॥७९॥

समपादैः समौ पादौ निष्कम्पौ च सुसंगतौ ।
असमे च पुरो वामे हस्तमात्रनतं वपुः ॥८०॥

समपादों से बराबर दोनों पैर विना ही लिये खड़ा हो बाण फेंके, और असमगति में आगे बायां पैर एक हाथ आगे रहे और शरीर झुका हुआ॥८०॥

आकुंचितोरूद्वौ यत्र जानुभ्यां धरणीं गतौ ।
दर्दुरक्रममित्याहुः स्थानकं दृढभेदने ॥८१॥

जहां दोनों ऊरू सिकोड़ कर जानुओं को धरती पर टेके, वह दर्दुरक्रम कहा है। दृढ़स्थान को भेद करने के लिये॥८१॥

सव्यं जानु गतं भूमौ दक्षिणं च सुकुञ्चितम् ।
अग्रतो यत्र दातव्यं तं विद्याद्गरुडक्रमम् ॥८२॥

बायां तो पृथिवी पर हो और दहिना सुकड़ा हुआ हो, आगे से जो दे उसको गरुड़क्रम जानना॥८२॥

पद्मासनं प्रसिद्धन्तु उपविश्य यथाक्रमम् ।
धन्विनां तत्तु विज्ञेयं स्थानकं शुभलक्षणम् ॥८३॥

पद्मासन प्रसिद्ध है, इसका जैसा क्रम है वैसे बैठकर बाण मारे,

धनुषधारी को जानना चाहिये, यह शुभलक्षण वाला स्थानक है।।८३।।

अथ गुणमुष्टयः

पताका वज्रमुष्टिश्च सिंहकर्णस्तथैव च ।
मत्सरी काकतुण्डी च योजनीया यथाक्रमम् ।।८४।।

अब गुणकी मुष्टि कहते हैं, पताका, वज्रमुष्टि, सिंहकर्ण, मत्सरी और काकतुण्डी ये पांच प्रकार गुण के हैं।।८४।।

दीर्घा तु तर्जनी यत्र ह्याश्रितोऽङ्गुष्ठमूलकम् ।
पताका सा च विज्ञेया नलिकादूरमोक्षणे ।।८५।।

जहां तर्जनी दीर्घ की जाय और अँगुठे को जड़ के पास हो, वह पताका जाननी, यह नलिका नाम बाण जिसमें रंजक और लोहकण भरे हों, उसके छोडने के लिये है।।८५।।

तर्जनीमध्यमामध्यमंगुष्ठो विशते यदि ।
वज्रमुष्टिस्तु सा ज्ञेया स्थले नाराचमोक्षणे ।।८६।।

तर्जनी और मध्यमा के बीच में यदि अँगूठा प्रवेश हो, वह वज्रमुष्टि जाननी, मोटा लोह का वाण छोड़ने के लिये इसका उपयोग करना।।८६।।

अंगुष्ठमध्यदेशन्तु तर्जन्यग्रं सुसंस्थितम् ।
सिंहकर्णः स विज्ञेयो दृढलक्ष्यस्य वेधने ।।८७।।

अँगूठे के बीच में तर्जनी का अग्र रखे, वह सिंहकर्ण जानना, दृढ़ लक्ष्य के वेधने में उपयोगी है।।८७।।

अंगुष्ठनखमूले तु तर्जन्यग्रं च संस्थितम् ।
मत्सरी सा च विज्ञेया चित्रलक्ष्यस्य वेधने ।।८८।।

अँगूठे के नख की जड़ में तर्जनी का अग्रभाग धरे; वह मत्सरी जाननी, चित्रकारी के निशाने के वेधने में यह उपयोगी है।।८८।।

अँगुष्ठाग्रे तु तर्जन्या मुखं यत्र निवेशितम् ।
काकतुण्डं च सा ज्ञेया सूक्ष्मलक्ष्ये सुयोजिता ॥८९॥

जहां तर्जनी का मुख अँगूठे के आगे निवेशित किया हो वह काकतुण्डी जानना, सूक्ष्म लक्ष्य में यह मुद्रा करनी॥८९॥

अथ धनुर्मुष्टिसंधानम्

संधानं त्रिविधं प्रोक्तमधं ऊर्ध्वं समं सदा ।
योजयेत्त्रिप्रकारं हि कार्येष्वपि यथाक्रमम् ॥९०॥

अब धनुष की मुष्टिका प्रकार कहते हैं, संधान तीन प्रकार का कहा है, अध:सन्धान १ ऊर्ध्वसन्धान २ और समसन्धान ३ ॥ ऊपर १ नीचे २ बराबर ३ इनको जैसा कार्य हो उसमें यथाक्रम से ३ तीन प्रकार से योजना करै॥९०॥

अधश्च दूरपातित्वे समे लक्ष्ये सुनिश्चले ।
दृढास्फोटं प्रकुर्वीत ऊर्ध्वसंधानयोगतः ॥९१॥

दूर बाण फेंकने को अध:सन्धान करना जो अचल वस्तु हो उस पर समसन्धान करना और वस्तु को तोड़ने के लिये ऊर्ध्वसंधान करना॥९१॥

अथ व्यायाः

कैशिकः केशमूले वै शरश्रृंगे च सात्विकः ।
श्रवणे वत्सकर्णश्च ग्रीवायां भरतो भवेत् ॥९२॥
अंसके स्कंधनामा च व्यायाः पंच प्रकीर्तिताः ॥

केशों की जड़ में कैशिक और सात्विक शर श्रृंगतक और वत्सकर्ण कानतक, ग्रीवातक भरत और स्कन्धनाम व्याय कंधे तक, ये पांच व्याय अर्थात् बाण के खैंचने के प्रकार कहे हैं॥९२॥

कैशिकश्चित्रयुद्धेषु ह्यधोलक्ष्येषु सात्विकः ।
वत्सकर्णः सदा ज्ञेयो भरतो गूढभेदने ॥९३॥
दृढभेदे च दूरे च स्कंधनामानमुद्दिशेत् ॥

कैशिक चित्रयुद्ध में और अधोलक्षों में सात्विक तथा बत्सकर्ण सदा जानना और गूढ़ भेद में भरत और दृढ़ भेद में तथा दूर वाण फेंकने को स्कंधनाम व्याय कहा है।।९३।।

अथ लक्ष्यम्

लक्ष्यं चतुर्विधं ज्ञेयं स्थिरं चैव चलं तथा ।
चलाचलं द्वयचलं वेधनीयं क्रमेण तु ।।९४।।

अब निशाना कहते हैं, चार प्रकार का लक्ष्य जानना एक स्थिर, दूसरा चल, तीसरा चलाचल, चौथा द्वयचल इनको क्रमसे वेधना चाहिये।।९४।।

आत्मानं सुस्थिरं कृत्वा लक्ष्यं चैव स्थिरं बुधः ।
वेधयेत्त्रिप्रकारं तु स्थिरवेधी स उच्यते ।।९५।।

बुद्धिमान् अपने को स्थिर करके तीनों प्रकार के संधानों से लक्ष्य को वेधे वह स्थिरवेधी कहाता है, तीन प्रकार पहिले कह चुके हैं।।९५।।

चलन्तु वेधयेद्यस्तु आत्मस्थानेषु संस्थितः ।
चलं लक्ष्यं तु तत्प्रोक्तमाचार्येण शिवेन वै ।।९६।।

चलते हुए को जो अपने स्थान पर बैठा हुआ वेधे उसको युद्ध के आचार्य शिवजी महाराज चल लक्ष्य कहते हैं।।९६।।

धन्वी तु चलते यत्र स्थिरलक्ष्ये समाहितः ।
चलाचलं भवेत्तच्च ह्यप्रमेयमचिंतितम् ।।९७।।

जहाँ धनुषधारी तो स्थिर लक्ष्यपर सावधान होकर चलता है, उसका नाम चलाचल है, जो चिंतन में नहीं आता है यह अत्यंत उत्तम लक्ष्य है।।९७।।

उभावेव चलौ यत्र लक्ष्यं चापि धनुर्द्धरः ।
तद्विज्ञेयं द्वयचलं श्रमेण बहु साध्यते ।।९८।।

जहाँ धनुषधारी और लक्ष्य दोनों चलते हों उसको द्वयचल जानो, वह बड़ी मेहनत से सिद्ध होता है।।९८।।

श्रमेणास्खलितं लक्ष्यं दूरं च बहुभेदनम् ।

श्रमेणास्खलिता क्रृष्टिः शीघ्रसंधानमाप्यते ॥९९॥

श्रम से छोड़ा हुआ निशाना, और बहुत दूर का भेदन और श्रम से मर्यादा के साथ खिंचा हुआ बाण शीघ्र संधान को प्राप्त होता है॥९९॥

श्रमेण चित्रयोधित्वं श्रमेण प्राप्यते जयः ।
तस्माद्गुरुसमक्षं हि श्रमः कार्यो विजानता ॥१००॥

श्रम से चित्रयोद्धा होता है और श्रम से ही जय प्राप्त होता है। इससे जानने वाले को गुरु के सामने ही परिश्रम करना चाहिये॥१००॥

प्रथमं वामहस्तेन यः श्रमं कुरुते नरः ।
तस्य चापक्रियासिद्धिरचिरादेव जायते ॥१॥

पहले बायें हाथ से जो मनुस्य श्रम करे, उसको धनुष की क्रिया सिद्धि शीघ्र ही हो जाती है॥१॥

वामहस्ते सुसंसिद्धे पश्चाद्दक्षिणमारभेत् ।
उभाभ्यां च श्रमं कुर्यान्नाराचैश्च शरैस्तथा ॥२॥

बाँयाँ हाथ सिद्ध हुए पीछे दाहिने से आरंभ करे, फिर दोनों से नाराच और बाणों से श्रम करे॥२॥

वामेनैव श्रमं कुर्यात्सुसिद्धे दक्षिणे करे ।
विशाखेनासमेनैव रथी व्याये च कैशिके ॥३॥

जब दाहिना हाथ सिद्ध हो जाय तब बाँये से ही श्रम करे, विशाखगति और असमपादगति से रथी कैशिक नाम व्याय से॥३॥

उदिते भास्करे लक्ष्यं पश्चिमायां निवेशयेत् ।
अपराह्ले च कर्तव्यं लक्ष्यं पूर्वदिगाश्रितम् ॥४॥

सूर्य के उदय से दोपहर तक पश्चिम दिशा में निशाना करे और अपराह्ल अर्थात् दोपहर ढले पीछे पूर्व दिशा में लक्ष्य साधन करे॥४॥

उत्तरेण सदा कार्यमवश्यमवरोधिकम् ।
संग्रामेण विना कार्यं न लक्ष्यं दक्षिणामुखम् ॥५॥

उत्तर दिशा को सदा अवश्य ही अवरोध से निशाना करना चाहिये, परंतु संग्राम के विना दक्षिण के सामने मुख करके निशाना कभी न

लगावे सिद्धान्त यह हुआ कि, सूर्य सदा पीठ पीछे वा दाहिनी ओर हो।।५।।

षष्टिधन्वंतरे लक्ष्यं ज्येष्ठं लक्ष्यं प्रकीर्तितम् ।
चत्वारिंशन्मध्यमं च विंशतिश्च कनिष्ठकम् ।।६।।

६० साठ वाण धनुष के लिये रखो, वह श्रेष्ठ निशाना कहता है, ४० वाणों से मध्यम और २० बीस वाणों से कनिष्ठ लक्ष्य कहाता है।।६।।

शरोंका यह प्रमाण कह दिया

अब नाराचोंका कहते हैं

चत्वारिंशच्च त्रिंशच्च षोडशैव भवेत्ततः ।।७।।

चालीस, तीन और पीछे सोलह नाराचों का अर्थात् समस्त लोहमय वाणों को रखने वाला क्रम से उत्तम मध्यम और कनिष्ठ कहाता है।।७।।

चतुःशतैश्च काण्डानां यो हि लक्ष्यं विसर्जयेत् ।
सूर्योदये चास्तमाने स ज्येष्ठो धन्विनां भवेत् ।।८।।

सूर्य के उदय में और अस्त में चार सौ वाणों का जो लक्ष्य छोड़े वह धनुषधारियो में वड़ा होता है।।८।।

त्रिशंतैर्मध्यमश्चैव द्विशताभ्यां कनिष्ठकः ।
लक्ष्यं च पुरुषोन्मान कुर्याच्चन्द्रकसंयुतम् ।।९।।

तीन सौ से मध्यम और दो सौ से कनिष्ठ इतना उन्मान मनुष्य का है, यह निशाना चन्द्रक के संयुत करे अर्थात् चांदमारी से करे।।९।।

ऊर्ध्वभेदी भवेज्ज्येष्ठो नाभिभेदी च मध्यमः ।
पादभेदी तु लक्ष्यस्य स कनिष्ठो मतो भृगो ।।११०।।

हे परशुराम! ऊर्ध्वभेदी तो ज्येष्ठ कहाता है और जो बीच में वेध करे, वह मध्यम और निशाने का पादवेधी जो हो वह कनिष्ठ कहाता है।।११०।।

अथाऽनध्यायः

अष्टमी च ह्यमावास्या वर्जनीया चतुर्दशी ।

पूर्णिमार्द्धदिनं यावन्निषिद्धं सर्वकर्मसु ॥११॥

अब अनध्यायों का वर्णन करते हैं, अष्टमी और अमावस और चौदस ये तिथियां वर्जित हैं, पूर्णमासी आधे दिन तक सब कामों में निषेध की है॥११॥

अकाले गर्जिते देवे दुर्दिनं चाथवा भवेत् ।
पूर्वकांडहतं लक्ष्यमनध्याये प्रचक्षते ॥१२॥

विना समय बादल गर्जे वा बादलों से छाया हुआ आकाश हो, पहला ही वाण लक्ष्य पर न लगे तो धनुर्वेद विद्या का अनध्याय होता है॥१२॥

अनुराधर्क्षमारभ्य षोडशर्क्षे दिवाकरः ।
यावच्चरति तं कालमकालं हि प्रचक्षते ॥१३॥

अनुराधा नक्षत्र से आरंभ होकर सोलह नक्षत्रों पर सूर्य जब तक रहे, उस समय को असमय कहते हैं, अर्थात् वृश्चिक के राशि के सूर्य से लेकर मार्गशीर्ष के महीने से ज्येष्ठ तक धनुष का अभ्यास न करे, केवल आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, और आश्विन, कार्तिक इन पांच मासों में ही अभ्यास और पठन पाठन करे॥१३॥

अरुणोदयवेलायां वारिदो यदि गर्जति ।
तद्दिने स्यादनध्यायस्तमकालं प्रचक्षते ॥१४॥

जिस समय प्रातःकाल लाल बादल हो सूर्य उदय होते समय यदि बादल गर्जे, उस दिन अनध्याय होता है उसको असमय कहते हैं॥१४॥

श्रमं च कुर्वतस्तत्र भुजंगो दृश्यते यदि ।
अथवा भज्यते चापं यदैव श्रमकर्मणि ॥१५॥
त्रुटचते वा गुणो यत्र प्रथमे बाणमोक्षणे ।
श्रमं तत्र न कुर्वीत शस्त्रे मतिमतां वरः ॥१६॥

धनुष अभ्यास करने के आरम्भ में जो सर्प दीखे अथवा धनुष टूट जाय और पहिले ही बाण छोड़ते समय डोरी टूट जाय तो बुद्धिमानों में श्रेष्ठ धनुर्द्धर को विचार करना चाहिये कि, वह धनुष का वा किसी शस्त्र का भी अभ्यास न करे॥१५-१६॥

अथ श्रमक्रिया

क्रियाकलापान्वक्ष्यामि श्रमसाध्याञ्छुचिष्मताम् ।
येषां विज्ञानमात्रेण सिद्धिर्भवति नान्यथा ॥१७॥

अब श्रम क्रिया कहते हैं, पवित्र पुरुषों के लिये धनुष की क्रिया कहते हैं, जो परिश्रम से सिद्ध हो सकती है, जिनके जानने मात्र से ही सिद्धि हो जाती है यह अन्यथा नहीं है॥१७॥

प्रथमं चापमारोप्य चूलिकां बन्धयेत्ततः ।
स्थानकं तु ततः कृत्वा बाणोपरि करं न्यसेत् ॥१८॥

प्रथम धनुष को आरोपण करके पीछे चूलिको बांधे, तत्पश्चात् स्थानक करके बाण पर हाथ रखे॥१८॥

तोलनं धनुषश्चैव कर्तव्यं वामपाणिना ।
आदानं च ततः कृत्वा सन्धानं च ततःपरम् ॥१९॥

धनुषका तोलन बाँये हाथ से करना चाहिये, बोझ तोलकर पीछे उठावे, उसके उपरान्त बाण संधान करे॥१९॥

सकृदाकृष्टचापेन भूमिवेधं न कारयेत् ।
नमस्कुर्याच्च मां विघ्नराजं गुरुधनुःशरान् ॥२०॥

पहले चढ़ाये धनुष से धरती का वेध न करे और हे विश्वामित्र! शिवजी महाराज कहते हैं कि गणेशजी को और मुझको, गुरुको, धनुषको, बाणों को नमस्कार करे॥२०॥

याचितव्या गुरोराज्ञा बाणस्याकर्षणं प्रति ।
प्राणवायुं प्रयत्नेन प्राणेन सह पूरयेत् ॥२१॥
कुम्भकेन स्थिरं कृत्वा हुङ्कारेण विसर्जयेत् ।
इत्यभ्यासक्रिया कार्या धन्विना सिद्धिमिच्छता ॥२२॥

फिर गुरु से बाण खैंचने की आज्ञा मांगे, प्राण वायु को जतन से प्राण के साथ पूरक करे, पीछे कुम्भक से वायु को स्थिरकर हुंकार से रेचक करे, सिद्धि चाहने वाले धनुषधारी को यदि सिद्धि चाहे तो इस अभ्यास की क्रिया करनी चाहिये॥२१-२२॥

षण्मासात्सिध्यते मुष्टिः शराः संवत्सरेण तु ।

नाराचास्तस्य सिध्यंति यस्य तुष्टो महेश्वरः ॥२३॥

छः महीने में मुट्ठी सिद्ध होती है और बाण एक वर्ष में सिद्ध होते हैं, नाराच उसके सिद्ध होते हैं, जिस पर श्रीमहादेवजी प्रसन्न हों॥२३॥

पुष्पवद्धारयेद्बाणं सर्पवत्पीडयेद्धनुः ।
धनवच्चिंतयेल्लक्ष्यं यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः ॥२४॥

यदि अपनी सिद्धि चाहे तो फूल की तरह बाण धारण करे, साँप की तरह धनुष को पीडन करे, धन की तरह लक्ष्य का चिंतन करे॥२४॥

क्रियामिच्छन्ति चाचार्या दूरमिच्छन्ति भार्गवाः ।
राजानो दृढमिच्छन्ति लक्ष्यमिच्छन्ति चेतरे ॥२५॥

आचार्य तो क्रिया की इच्छा करते हैं और भृगुवंशी बाण दूर जाकर पड़े यह इच्छा करते हैं, राजा अंग दृढ़ वस्तु कट जाय ऐसी इच्छा करते हैं और लोग लक्ष्य (निशाना) अच्छा लगे, इसकी इच्छा करते हैं॥२५॥

जनानां रंजनं येन लक्ष्यपातात्प्रजायते ।
हीनेनापीषुणा तस्मात्प्रशस्तं लक्ष्यवेधनम् ॥२६॥

जिस लक्ष्य के मारने से मनुष्यों का चित्त प्रसन्न हो, इससे छोटे बाण से भी लक्ष्य का बींधना अच्छा है छोटे बाण से निशाना अच्छा बिंधता है यह बात सिद्ध हुई॥२६॥

अथ लक्ष्यास्खलनविधिः

विशाखस्थानकं हित्वा समसंधानमाचरेत् ।
गोपुच्छमुखबाणेन सिंहकर्णे न मुष्टिना ॥२७॥
आकर्षेत्कौशिकव्याये न शिखाश्चालयेत्ततः ।
पूर्वापरौ समं कार्यौ समासौ निश्चलौ करौ ॥२८॥
चक्षुषी स्पंदयेन्नैव दृष्टिं लक्ष्ये नियोजयेत् ।
मुष्टिनाऽऽच्छादितं लक्ष्यं शरस्याग्रे नियोजयेत् ॥२९॥
मनो दृष्टिगतं कृत्वा ततः काण्डं विसर्जयेत् ॥

स्खलत्येव कदाचिन्न लक्ष्ये योधो जितश्रमः ॥३०॥

अब निशाना न चूकने की विधि, विशाख स्थान को छोड़कर समसंधान करे, समसंधान के लक्षण पहिले कह आये हैं, गोपुच्छमुख बाण से और सिंहकर्ण मुष्टि से, कौशिकव्याय से खैंचे और शिखा को भी न चलावे, पूर्व और पर समान करे, दोनों कंधे बराबर करे,और दोनों हाथों को हिलने न दे, आँखों को किंचित् भी न चलावे निगाह को निशाने पर जोड़े, मुट्ठी से लक्ष्य को ढ़ककर बाण के आगे करे,मन को दृष्टि से करके अर्थात् जहाँ निशाने पर दृष्टि हो वहां ही मन देकर पीछे बाण छोड़े, इस विधि से जितश्रम योधा कभी भी निशाने से नहीं चूकता है, क्योंकि उसने श्रम से लक्ष्य को जीत लिया॥२७-३०॥

अथ शीघ्रसंधानम्

आदानं चैव तूणीरात्संधानं कर्षणं तथा ।
क्षेपणं च त्वरायुक्तो बाणस्य कुरुते तु यः ॥३१॥
नित्याभ्यासवशात्तस्य शीघ्रसंधानता भवेत् ।

अब शीघ्रसंधान कहते हैं, जो पुरुष माथे में से बाण लेकर संधान करके कर्षण करे, फिर जल्दी ही क्षेपण करे वह ऐसे नित्य के अभ्यास से शीघ्र संधानता हो जाती है॥३१॥

अथ दूरपातित्वम्

मुष्टचापताकया बाणं स्त्रीचिह्नं दूरपातनम् ॥३२॥

पताका नाम मुष्टि से स्त्री चिह्न वाले बाण को फेंके तो दूर पड़े॥३२॥

अथ दृढ़भेदिता

प्रत्यालीढे कृते स्थाने ह्यधःसंधानमाचरेत् ।
दर्दुरस्थानमास्थाय ह्यूर्ध्वं धारणमाचरेत् ॥३३॥
स्कंधव्यायेन वज्रस्य मुष्टचा पुंमार्गणेन च ।

अत्यन्तसौष्ठवाद्धाह्वोर्जायते दृढभेदिता ॥३४॥

पत्यालीढ़ स्थान किये पीछे अध:संधान करै और दर्दुर स्थान से स्थित होकर ऊर्ध्वसंधान करे, स्कंधव्याय से वज्रमुष्टि और पुरुष बाण समसंधान करै, ऐसा करने से बहुत अच्छी दृढ़भेदिता हाथों से ही बाणों की हो जाती है॥३३-३४॥

अथ हीनगतयः

सूचीमुखा मीनपुच्छा भ्रमरी च तृतीयका ।
शराणां गतयस्तिस्रः प्रशस्ताः कथिता बुधैः ॥३५॥

अब हीन गतियों का वर्णन करते हैं। सूचीमुख १ मीनपुच्छ २ तीसरी भ्रमरी ३ ये बाणों की तीन चाल श्रेष्ठ कही हैं॥३५॥

सूचीमुखा गतिस्तस्य सायकस्य प्रजायते ।
पत्रं विलोकितं यस्य ह्यथवा हीनपत्रकम् ॥३६॥

जिस बाण के पर देखे हों, अर्थात् परवाला हो, अथवा पर रहित हो, उस बाण की सूचीमुख चाल हो जाती है॥३६॥

कर्करीतन्तु चापेन यैः कृष्टो हीनमुष्टिना ।
मत्स्यपुच्छा गतिस्तस्य सायकस्य प्रकीर्तिता ॥३७॥

जिस बाण को कठिन धनुष और पूर्वोक्त हीन मुष्टि से खैंचा जाय उसकी मत्स्यपुच्छा गति श्रीमहादेवजी महाराज ने कही है॥३७॥

भ्रमरी कथिता ह्येषा शिवेन श्रमकर्मणि ।
ऋजुत्वेन विना याति क्षेप्यमाणस्तु सायकः ॥३८॥

फेंका हुआ जो बाण सीधापन के विना ही जाय इसको शिवजी महाराज ने श्रमकर्म में भ्रमरी कहा है पूर्वोक्त तिर्यग्गत लक्ष्य वेधन के लिये श्रेष्ठ हैं॥३८॥

अथ बाणानां लक्ष्यस्खलनगतयः

वामगा दक्षिणा चैव ऊर्ध्वगाऽधोगमा तथा ।
चतस्रो गतयः प्रोक्ता बाणस्खलनहेतवः ॥३९॥

वांई ओर जानेवाली, दाहिनी ओर जानेवाली, ऊपर को और वैसे ही नीचे को गति हो जाय, ये चार गतियां श्रीमहादेवजी ने बाणों के स्खलन के कारण कही हैं।।३९।।

अथैतासां क्रमेणोदाहरणानि

कम्पते गुणमुष्टिस्तु मार्गणस्य तु पृष्ठतः ।
संमुखी स्याद्धनुर्मुष्टिस्तदा वामे गतिर्भवेत् ।।४०।।

गुणा की मुष्टि जो कि बाण की पीठ पर से काँपे और धनुष की मुष्टि सामने होय तब बाण सीधा जाके नहीं लगे, किंतु बाईं ओर को उसकी चाल हो जाती है, इसलिये गुणा की मुष्टि को काँपने न दे।।४०।।

ग्रहणं शिथिलं यस्य ऋजुत्वेन विवर्जितम् ।
पार्श्वं तु दक्षिणं याति सायकस्य न संशयः ।।४१।।

जिस बाण का पकड़ना ढीला हो और सीधापन से भी रहित हो वह दाहिनी ओर चला जाता है, इसमें संदेह नहीं।।४१।।

ऊर्ध्वं भवेच्चापमुष्टिर्गुणमुष्टिरधो भवेत् ।
स मुक्तो मार्गणो लक्ष्यादूर्ध्वं याति न संशयः ।।४२।।

धनुष की मुट्ठी ऊपर को हो और गुणा की मुष्टि निशाने से नीचे को हो तो वह शर लक्ष्यवेध को छोड़कर ऊपर को चला जाता है इसमें कुछ संशय नहीं।।४२।।

मोक्षणे चैव बाणस्य चापे मुष्टिरधो भवेत् ।
गुणमुष्टिर्भवेदूर्ध्वं तदाधोगामिनी गतिः ।।४३।।

वाण के छोड़ने पर धनुष की मुष्टि यदि निशाने से नीचे हो और गुणा की मुष्टि ऊपर हो तब बाण की गति नीचे को हो जाती है, सिद्धांत यह है कि चापमुष्टि और गुणामुष्टि से लक्ष्य को ढक लेना चाहिये तब लक्ष्यभेद होता है अन्यथा नहीं होता।।४३।।

अथ शुद्धगतयः

लक्ष्यबाणाग्रदृष्टीनां संगतिस्तु यदा भवेत् ।

तदानीं मुंचितो बाणो लक्ष्यान्न स्खलति ध्रुवम् ।।४४।।

अब शुद्ध गति का वर्णन ऐसा है कि, लक्ष्य और वाण का अग्रभाग तथा दृष्टि ये तीनों एक ही हो जायँ, तब छोड़ा हुआ बाण निशाने से नहीं चूकता।।४४।।

निर्दोषः शब्दहीनश्च सममुष्टिद्वयोज्झितः ।
भिनत्ति दृढवेध्यानि सायको नास्ति संशयः ।।४५।।

दोष रहित और शब्द से हीन गुणा और धनुष इनकी समान मुष्टि से छोड़ा हुआ बाण कठिन वस्तुओं को विदारण कर देता है, इसमें संदेह नहीं।।४५।।

स्वाकृष्टस्तेजितो यश्च सुशुद्धो गाढमुष्टितः ।
नरनागाश्वकायेषु न तिष्ठति स मार्गणः ।।४६।।

सुंदर खैंचा हुआ तेज किया हुआ जो अच्छा स्वच्छ पक्ष आदि बँधा हो वह बाण गाढ़ी मुष्टि से छोड़ा हुआ, मनुष्य हाथी घोड़ों के शरीरों में नहीं ठहरता अर्थात् पार हो जाता है।।४६।।

यस्य तृणसमा बाणा यस्येन्धनसमं धनुः ।
यस्य प्राणसमा मौर्वी स धन्वी धन्विनां वरः ।।४७।।

जिसके तृण के समान बाण, और जिसके ईंधन के तुल्य धनुष और प्राण के समान मौर्वी (प्रत्यंचा) हो वह धनुषधारी धनुषधारियों में श्रेष्ठ है।।४७।।

अथ दृढचतुष्कम्

अयश्चर्मघटश्चैव मृत्पिंडश्च चतुष्टयम् ।
यो भिनत्ति न तस्येषुर्वज्रेणापि विदार्यते ।।४८।।

अब दृढचतुष्क कहते हैं, लोह, चमड़ा, घड़ा, मिट्टी के पिण्ड इन चारों को जो वाण भेदन करे उसका बाण वज्र से भी न कटे।।४८।।

सार्द्धाङ्गुलप्रमाणेन लोहपत्राणि कारयेत् ।
तानि भित्त्वैकबाणेन दृढघाती भवेन्नरः ।।

डेढ़ अंगुल के मान चौड़े लोहे के पत्र करावे, उनको एक वाण से जो वेध

दे वह दृढ़घाती मनुष्य होता है।।

चतुर्विंशतिचर्माणि यो भिनत्तीषुणा नरः ।
तस्य बाणो गजेन्द्रस्य कायं निर्भिद्य गच्छति ।।४९।।

जो मनुष्य एक बाण से २४ चौबीस चमड़ों को बींध दे, उसका बाण बड़े भारी हाथी के शरीर को भी भेदन कर चला जायगा।।४९।।

भ्राम्यं जले घटो वेध्यश्चक्रे मृत्पिंडकं तथा ।।
भ्रमंतं वेधयेद्यो हि दृढभेदी स उच्यते ।।५०।।

जल में घुमाकर घड़ा बींधना चाहिये और वैसे ही कुम्हार के चाक के मिट्टी के घूमते हुए पिण्डे को, जो भ्रमण करती हुई वस्तु को वेधे वह दृढ़ भेदी कहाता है।।५०।।

अयस्तु काकतुण्डेन चर्म चारामुखेन हि ।
मृत्पिण्डं च घटं चैव विध्येत्सूचीमुखेन वै ।।५१।।

लोहे की वस्तु को काकतुण्ड से, ढाल को आरामुख से और मिट्टी के ढेले को और घड़े को सूचीमुख बाण से वेधे।।५१।।

अथ चित्रविधिः

बाणभंगकरावर्तकाष्ठच्छेदनमेव च ।
बिंदुकं गोलकयुगं यो वेत्ति स जयी भवेत् ।।५२।।

बाण के तोड़ने की विधि और काष्ठच्छेदन, तथा बिंदी (चांदमारी) और दो गोलों को जो बींधना जाने वह परसेना को जीतता है।।५२।।

लक्ष्यस्थाने धृतं काण्डं सन्मुखं छेदयेत्ततः ।।
किंचिन्मुष्टिं विधाय स्वां तिर्यग्द्विफलकेषुणा ।।५३।।
सम्मुखं बाणमायान्तं तिर्यग्बाणं न संचरेत् ।
प्राप्तं शरेण यश्छिद्याद्बाणच्छेदी स उच्यते ।।५४।।

निशाने के स्थान में धारण किये हुए बाण को सामने आते २ ही मार्ग में काट दे, कुछ अपनी मुष्टि को करके तिरछा हो, दो फलवाले बाण से वा अर्धचन्द्र से शत्रु के शिर को मध्य से काट दे, सामने आते हुए बाण को

तिरछा बाण न चलावे, किंतु आप तिरछा हो जाय बाण से बाण को जो काट दे, वह बाण छेदी कहाता है।।५३-५४।।

अथ काष्ठच्छेदनम्

काष्ठेऽश्वकेशं संयम्य तत्र बध्द्वा वराटिकाम् ।
हस्तेन भ्राम्यमाणं च यो हन्ति स धनुर्धरः ।।५५।।
लक्ष्यस्थाने न्यसेत्काष्ठं सार्द्रं गोपुच्छसन्निभम् ।
यश्छिद्यात्तत्क्षुरप्रेण काष्ठच्छेदी स जायते ।।५६।।

अत्र काष्ठच्छेदन को कहते हैं, लकड़ी को घोड़े का बाल बाँधकर उसमें कौड़ी बांधकर घूमती हुई कोड़ी को जो मार दे वह धनुषधारी है, निशाने की जगह गीली लकड़ी को काली करके रखे, जो उसको क्षुरप्रबाण से छेदन करदे वह सब काष्ठों को काट देगा और (काष्ठच्छेदी) की पदवी मिलेगी।।५५-५६।।

लक्ष्ये बिंदुंन्यसेच्छुभ्रं शुभ्रबंधूकपुष्पवत् ।
हन्ति तं बिन्दुकं यस्तु चित्रयोधा स उच्यते ।।५७।।

लक्ष्य की जगह सफेद बिंदी शुक्लकुन्दके फूल की सदृश रखे, उस बिन्दु को जो वेध दे वह (चित्रयोधा) कहाता है।।५७।।

काष्ठगोलयुगं क्षिप्रं दूरमूर्ध्वं पुरा स्थितैः ।
असम्प्राप्तं शरं पृष्ठे तद्गोपुच्छमुखेन हि ।।५८।।
यो हन्ति शरयुग्मेन शीघ्रसंधानयोगतः ।
स स्याद्धनुर्भृतां श्रेष्ठः पूजितः सर्वपार्थिवैः ।।५९।।

दो काष्ठ के गोलों को शीघ्रता से ऊपर को आकाश में फेंक दे वे दोनों धरती पर गिरने न पावें उनकी पीठ को गोपुच्छमुख से जो वेध दे दो बाणों से शीघ्रसंधान के योग से वह धनुषधारियों में श्रेष्ठ है और सब राजाओं से पूजित है, अर्थात् सब राजाओं को उसका सत्कार करना चाहिये।।५८-५९।।

अथ धावल्लक्ष्यम्

रथस्थेन गजस्थेन हयस्थेन च पत्तिना ।
धावता वै श्रमः कार्यो लक्ष्यं हन्तुं स निश्चितम् ।।६०।।

रथी वा गजी अथवा सवार वा पैदल को भागते हुए पर लक्ष्य मारने का श्रम करना चाहिये।।६०।।

अथ विधिः

वामादायाति यल्लक्ष्यं दक्षिणं हि प्रधावति ।
तच्छिंद्याच्चापमाकृष्य सव्येनैव च पाणिना ।।६१।।
तथैव दक्षिणायांतु विध्येद्वाणाद्धनुर्धरः ।।
आलीढक्रममारोप्य त्वराहन्याच्च तं नरः ।।६२।।
वायोरपि बलं दृष्ट्वा वामदक्षिणवाहतः ।
लक्ष्यं स साधयेदेवं गाधिपुत्र नृपात्मज ।।६३।।
वायुपृष्ठे दक्षिणे च वहन्सूचयते बलम् ।
सम्मुखीनश्च वामश्च भटानां भङ्गसूचकः ।।६४।।

अब भागते हुए को मारने की विधि कहते हैं, जो निशाना बायें हाथ की ओर से आता हुआ दाहिनी ओर भागता जाता हो, उसको बाँयें खैंचकर बाण हाथ से मारे, वैसे ही दक्षिण की ओर से आता हो उसको धनुषधारी मनुष्य आलीढक्रम करके मारे आलीढक्रम पहले कह आये, बांई ओर से चलता हुआ वा दाहिनी ओर से वायु चलता हो तो उसका बल भी देख ले, यदि बांईं ओर से चलता हो तो धनुष को दाहिनी ओर झुका दे और दाहिना वायु हो तो बांईं ओर बाण छोड़ दे। हे गाधि के पुत्र! हे राजा के पुत्र! ऐसे निशाना साधन करे, जिसके पीठ पीछे का वा दाहिनी ओर का वायु चलता हो, वही जीतता है और जिसके सामने का व बांई ओर पवन चलता है वह हार जाता है, जोधाओं का भंग सूचक है।।६१-६४।।

अथ शब्दवेधित्वम्

लक्ष्यस्थाने न्यसेत्कांस्यपात्रं हस्तद्वयान्तरे ।
ताडयेच्छर्कराभिस्तच्छब्दः संजायते यदा ।।६५।।
यत्र चैवोद्यते शब्दस्तं सम्यक्तत्र चिंतयेत् ।
कर्णेन्द्रियमनोयोगाल्लक्ष्यं निश्चयतां नयेत् ।।६६।।

पुनः शर्करया तच्च ताडयेच्छब्दहेतवे ।
पुनर्निश्चयतां नेयं शब्दस्थानानुसारतः ॥६७॥
ततः किंचित्कृतं दूरं नित्यं नित्यं विधानतः ।
लक्ष्यं समभ्यसेध्द्वांते शब्दवेधनहेतवे ॥६८॥
ततो बाणेन हन्यात्तदवधानेन तीक्ष्णधीः ।
एतच्च दुष्करं कर्म भाग्ये कस्यापि सिध्यति ॥६९॥

निशाने के स्थान में कांसे का पात्र दो हाथ दूर रखे फिर उसको बालूरेत से ताडन करे, तब शब्द उत्पन्न हो, जहां से शब्द उत्पन्न हो उसको भली भाँति चिंतन करे, कान इन्द्रिय और मन के योग से निशाने को निश्चय करे फिर उसको शब्द सुनने के हेतु शब्दस्थान के अनुसार ताडन करे, जब दो हाथ अंतर से शब्द सुनने का अभ्यास हो जाय। तब कुछ उस कांस्यपात्र को दूर धरे, नित्य बढ़ता जाय, ऐसे शब्दवेधन के लिये निशाने का अभ्यास अँधेरे में करे, फिर बाण से निशाने को सावधान चित्त से हनन करे, यह दुष्कर कर्म किसी के भाग्य में हो उसको सिद्ध होता है॥६५-६९॥

अथ प्रत्यागमनम्

खगं बाणन्तु राजेन्द्र प्रक्षिपेद्वायुसम्मुखे ।
रंजकस्य च नालाभिरतो ह्यागमनं भवेत् ॥७०॥

हे राजेन्द्र विश्वामित्र! खगनाम बाण को वायु के सामने फेंके जिसमें रंजक की नलिका लगी हों, इससे उस बाण का फिर आगमन हो जाता है॥७०॥

अथास्त्रविधिः

एवं श्रमविधिं कुर्याद्यावत्सिद्धिः प्रजायते ।
श्रमे सिद्धे च वर्षासु नैव ग्राह्यं धनुष्करे ॥७१॥
पूर्वाभ्यासस्य शस्त्राणामविस्मरणहेतवे ।
मासद्वयं श्रमं कुर्यात्प्रतिवर्षं शरदृतौ ॥७२॥

जाते वाऽऽश्वयुजे मासे नवमीदेवतादिने ।
पूजयेदीश्वरीं चण्डीं गुरुं शस्त्राणि वाजिनः ।।७३।।
विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्वा कुमारीर्भोजयेत्ततः ।
देव्यै पशुबलिं दद्याद्वृतो वादित्रमंगलैः ।।७४।।
ततस्तु साधयेन्मंत्रान्वेदोक्तान्वागमोदितान् ।
अस्त्राणां कर्मसिद्धचर्थं जपहोमविधानतः ।।७५।।

ऐसे श्रमविधि करे, जब तक सिद्धि हो श्रमसिद्धि हुए पीछे वर्षा में धनुष को कर में धारण न करे पूर्व अभ्यास किये हुए शस्त्रों के न भूलने के कारण दो महीना परिश्रम करे, प्रत्येक वर्ष के शरदृतु में अथवा आश्विन महीने में शुक्ल पक्ष की ९ नवमी देवी के दिन चण्डी ईश्वरी और गुरु तथा हथियार और घोड़ों की राजा वा अभ्यासी पूजा करे, ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर पीछे कुंवारी कन्याओं को जिमावे, देवी के लिये बाजों और मंगलों के साथ पशु की बलि दे। पीछे वेदोक्त हों वा शास्त्रोक्त हों अस्त्रों की कर्मसिद्धि के लिये जप और होम की विधि से मंत्रों का साधन करे।।७१-७५।।

ब्राह्मं नारायणं शैवमैन्द्रं वायव्यवारुणे ।
आग्नेयं चापरास्त्राणि गुरुदत्तानि साधयेत् ।।७६।।
मनोवाक्कर्मभिर्भाव्यं लब्धास्त्रेण शुचिष्मता ।
अपात्रमसमर्थं च दहन्त्यस्त्राणि पूरुषम् ।।७७।।
प्रयोगं चोपसंहारं यो वेत्ति स धनुर्द्धरः ।
सामान्ये कर्मणि प्राज्ञो नैवास्त्राणि प्रयोजयेत् ।।७८।।

ब्राह्म, नारायण, शैव, ऐन्द्र, वायव्य, वारुण, आग्नेय और गुरु के दिये हुए अस्त्रों का साधन करे, पवित्र पुरुष मन, वाणी, कर्म से अनुभव करे अस्त्रों को पाकर, अस्त्रों का प्रयोग और संहार जो जाने वह धनुर्धर है, सामान्य काम के लिये बुद्धिमान् अस्त्रों का प्रयोग न करे।।७६-७८।।

अथास्त्राणि प्रवक्ष्यामि सावधानोऽवधारय ।
ब्रह्मास्त्रं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं ब्रह्मदंडकम् ।।७९।।
ब्रह्मशिरस्तृतीयं च तुर्यं पाशुपतं मतम् ।

वायव्यं पञ्चमं प्रोक्तमाग्नेयं षष्ठकं स्मृतम् ॥८०॥
नारसिंहं सप्तमञ्च तेषां भेदा ह्यनन्तकाः ।
ससंहारं सुविज्ञेयं शृणु गाधे यथातथम् ॥८१॥
वेदमात्रा सर्वशस्त्रं गृह्यते दीप्यतेऽथवा ।
तत्प्रयोगं शृणु प्राज्ञ ब्रह्मास्त्रं प्रथमं शृणु ॥८२॥

हे विश्वामित्र! अब तुम सावधान होकर धारण करो, मैं अस्त्रों को कहूंगा, पहिला ब्रह्मास्त्र कहा, दूसरा ब्रह्मदण्ड, तीसरा ब्रह्मशिर, चौथा पाशुपतास्त्र, पांचवाँ वायव्यास्त्र, छठवां आग्नेयास्त्र, सातवाँ नारसिंह इनके अनंत भेद हैं, इनको संहार के साथ जानना योग्य है। हे गाधिवंशज! जैसा है वैसा सुनो, ये सब वेदमाता गायत्रीमंत्र से ग्रहण करना अथवा दीप्यमान करना। हे प्राज्ञ! इनका प्रयोग सुनो, इनमें से पहिला ब्रह्मास्त्र सुनो॥७९-८२॥

अथास्त्राणि

दादिदन्ताञ्च सावित्रीं विपरीतां जपेत्सुधीः ।
जप्त्वापूर्वं निखर्वंचाभिमंत्र्य विधिवच्छरम् ॥८३॥
क्षिपेच्छत्रुषु सहसा नश्यंति सर्वजातयः ।
बाला वृद्धाश्च गर्भस्था ये च योद्धुं समागताः॥८४॥
सर्वे ते नाशमायान्ति मम चैव प्रसादतः ।
यथातथं दादिदन्तं जपेत्संहारसिद्धये ॥८५॥

अब अस्त्रविद्या कहते हैं, 'द' को आदि ले 'द' के अन्त तक सावित्री को विपरीत जपे, पहिले एक निखर्व विधि से जपकर पुनः बाण को मंत्रितकर शीघ्र शत्रुओं पर फेंके, सब जाति नष्ट हों, बालक वृद्ध गर्भस्थ और जो कोई युद्ध करने को आये हों वे सब नाश को प्राप्त हों, मेरी कृपा से और संहार की सिद्धि को 'द' से आदि ले 'द' के अन्त तक जपे॥८३-८५॥

ब्रह्मदण्ड प्रवक्ष्यामि प्रणवं पूर्वमुच्चरेत् ।
ततः प्रचोदयाज्ज्ञेयं ततो नोयो धियः क्रमात् ॥८६॥

ततो धीमहि देवस्य ततो भर्गो वरेणियम् ।
सवितुस्तच्च योक्तव्यममुकशत्रुं तथैव च ॥८७॥
ततो हन हन हुंफट् जप्त्वा पूर्वं द्विलक्षकम् ।
अभिमंत्र्य शरं तद्वत्प्रक्षिपेच्छत्रुषु स्फुटम् ॥८८॥
नश्यन्ति शत्रवः सर्वे यमतुल्या अपि ध्रुवम् ।
एतदेव विपर्यस्तं जपेत्संहारसिद्धये ॥८९॥

ब्रह्मदण्ड कहते हैं, पहिले प्रणव उच्चारण कर पीछे प्रचोदयात् पीछे नो यो धियो क्रम से पीछे धीमहि देवस्य, पीछे भर्गो वरेणियम्, पीछे सवितुः जोड़कर अमुक शत्रु को वैसेहि जोड़े पीछे हन हन हुंफट् जपकर दो लाख बाण का मंत्रितकर शत्रुओं पर फेंके, सारे शत्रु यदि यमराज के तुल्य हों तो भी नाश हो इसी को संहार की सिद्ध के लिये उलटा जपे॥८६-८९॥

ब्रह्मशिरः प्रवक्ष्यामि प्रणवं पूर्वमुच्चरेत् ।
धियो यो नः प्रचोदयात् भर्गोदेवस्य धीमहि ॥९०॥
तत्सवितुर्वरेण्यं शत्रून्मे हनहनेति च ।
हुंफट् चैव प्रयोक्तव्यं क्षिपेद्ब्रह्मशिरस्ततः ॥९१॥
पुरश्चर्यां पुरः कृत्वा त्रिलक्ष्यं नियतः शुचिः ।
नश्यन्ति सर्वे रिपवः सर्वे देवाः सुरा अपि ॥९२॥
इदमेव प्रयोक्तव्यं विपर्यस्तं विकर्षणे ॥९३॥

ब्रह्मशिर अस्त्र को कहते हैं, पहिले प्रणव उच्चारण करे पीछे तत्सवितुर्वरेण्यं शत्रून्मे हन २ हुं फट् जोड़ना चाहिये पीछे ब्रह्म शिर को फेंके, तीन लाख का पुरश्चरण करके पवित्र होके देवता वा असुर कोई शत्रु हो सब नाश को प्राप्त हों और इसी को संहार के निमित्त उलटा जपे॥९०-९३॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि चास्त्रं पाशुपतं तव ।
यस्य विज्ञातमात्रेण नश्यन्ति सर्वशत्रवः ॥९४॥
दादिदन्तां च सावित्रीं प्रोच्य प्रणवमेव च ।
श्लीं पशुं हुंफट् अमुकशत्रून् हन हन हुंफट् ॥९५॥
जप्त्वा पूर्वं द्विलक्षं च ततः पाशुपतं क्षिपेत् ॥

पुनस्तदेव व्यस्तं स्यात्संहारे तां निजोजयेत् ॥
एतत्पाशुपतं चास्त्रं सर्वशस्त्रनिवारणम् ॥९६॥

इससे परे पाशुपतास्त्रको कहते हैं, जिसके जानने से सब शत्रु नष्ट हो जायँ, 'द' को आदि ले 'द' के अंत तक प्रणव कहकर श्लीं पशुं हुंफट् अमुक शत्रुको (हुंफट्) ऐसा दो लाख मंत्र जपकर पीछे पाशुपतास्त्र फेंके फिर संहार के लिये (व्यस्त) उलटा जपे, यह पाशुपतास्त्र सब शत्रुओं का निवारण करने वाला है॥९४-९६॥

वच्मि वायव्यमस्त्रं ते येन नश्यन्ति शत्रवः ।
ॐवायव्यया वायव्ययान्योर्वा यया वा तथा ।
अमुकशत्रून् हन हन हुंफट् चैव प्रकीर्तयेत् ।
पूर्वमेव तथा जप्त्वा नियुतद्वितयं तथा ॥९७॥
पुनः संहाररूपेण संहारं च प्रकल्पयेत् ।
अस्त्रं वायव्यकं नाम देवानामपि वारणम् ॥९८॥

तुमको वायव्य अस्त्र कहता हूं, जिससे शत्रु नाश हों, "ॐ वायव्यय" आदि के पहिले दो लाख जपकर फिर संहाररूप से संहार करे, यह वायव्यास्त्र देवताओं को भी हटा देता है॥९७-९८॥

आग्नेयं संप्रवक्ष्यामि यतः परभयं दहेत् ।
ॐ आग्निस्त्यताहृदुभूं च शिवं वना भ्याविणि च ॥
हृगादशरूप नः सदवेति ततः क्रमात् ॥
हादतितोयतिराम तथा मसोहिवावान् ॥९९॥
सुसेदवेदया च वदेत् अमुकादींस्ततो वदेत् ।
पूर्वोक्तां च पुरश्चर्यां कृत्वाशस्त्रेऽभियोजयेत् ।
इमं मंत्रं पुनर्व्यस्तं संहारे चैव योजयेत् ॥१००॥

अब आग्नेयास्त्र कहते हैं, जिससे शत्रु का भय दूर हो "ॐ आग्नि" यहां से लेकर सुसेदवेया यहां तक मंत्र पढ़ शत्रु का नाम जोड़े, दो लाख मंत्र जपे फिर शस्त्रपर योजना करे वा अस्त्र चलावे फिर संहार के लिये उलटा जपे॥९९-१००॥

ॐ वज्रनखवज्रदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुंफट् ।
पूर्वं जप्त्वा च लक्षं हि नरसिंहं च योजयेत् ।
सिंहरूपास्ततो बाणाः पतंति शात्रवे वने ॥१॥
पूर्वोक्तेन प्रकारेण संहारं च प्रकल्पयेत् ।
संक्षेपतो महाभाग तवोक्तानि महामते ॥२॥
भेदास्त्वेषां शिवेनैव ह्यनन्ताः परिकीर्तिताः ।

इत्यस्त्रप्रकरणम्

पूर्वोक्त मंत्र को एक लाख जपकर श्रीनृसिंहजी महाराज का ध्यान कर योजना करे, पीछे बाण सिंहरूप हो शत्रुरूपी वन में पड़कर उनको खा जाते हैं पूर्वोक्त प्रकार से संहार करे , हे महाभाग! मैंने तेरे आगे संक्षेप से अस्त्र कहे, इनके भेद तो श्रीशिवजी महाराज ने परशुरामजी के प्रति अनंत कहे हैं।।१-२।।

इत्यस्त्रप्रकरणं समाप्तम्

हस्तेर्के लांगलीकन्दो गृहीतस्तस्य लेपतः ।
शूरस्यापि रणे पुंसो दर्पं हरति कातरः ॥३॥

हस्त नक्षत्र में रविवारको जलपीपल का कन्द लेकर लेप करने से कायर पुरुष भी शूरवीर के अभिमान को दूर कर देता है।।३।।

गृहीत्वा योगनक्षत्रैरपामार्गस्य मूलकम् ।
लेपमात्रेण वीराणां सर्वशस्त्रनिवारणम् ॥४॥

पुष्य रविवार सिद्धयोग में ऊँगा, जिसे चिरचिटा द्यौ तारा भी कहते हैं उसकी जड़ लेकर रखले जिस दिन किसी से युद्ध का काम पड़े, उस दिन शरीर के लेप करे तो वीरों के सर्व शस्त्र न लगें।।४।।

अधःपुष्पी शंखपुष्पी लज्जालुर्गिरिकर्णिका ।
नलिनी सहदेवी च पत्रमौंजार्कयोस्तथा ॥५॥
विष्णुक्रान्ता च सर्वासां जटा ग्राह्या रवेर्दिने ।
बद्धवा भुजे विलेपाद्वा काये शस्त्रापवारकः ॥६॥
सर्पव्याघ्रादिसत्वानां भूतादीनां न जायते ।
भीतिस्तस्य स्थिता यस्य मातरोऽष्टौ शरीरके ॥७॥

अध:पुष्पी जिसको औंधाहूली कहते हैं, शंखाहूली, छुईमुई, वनमोगरा, कमोदिनी, सहदेई, मूंज का और आक का पत्र, विष्णुक्रांता इन सबों की जड़ रविवार को ग्रहण करके हाथों से बाँधे, वा शरीर पर लेपन करे तो सब शस्त्र दूर हों, साँप बाघ आदि हिंस्रजीवों की बाधा न हो और आठ मातृदेवियों से भी रक्षा हो।।५-७।।

गृहीतं हस्तनक्षत्रे चूर्णं छुच्छुन्दरीभवम् ।
तत्प्रभावाद्गजः पुंसः सम्मुखं नैति निश्चितम् ।।८।।
हरिमांसं गृहीत्वा च मार्गेऽश्वानां क्षिपेद्भुवि ।
तेन मार्गेण ते चाश्वा नायांति ताडनेन वै ।।९।।

हस्त नक्षत्र में छुच्छुंदरी अर्थात् सुणसुणियां का चूरा ले, उसके प्रभाव से पुरुष के सामने हाथी नहीं आवे, यह निश्चय किया हुआ है, शेर का मांस लेकर जहाँ घोड़ों का मार्ग हो, वहाँ पृथ्वीपर पटक दे तो उस मार्ग से वे घोड़े कोड़े मारने से भी नहीं आते हैं।।८-९।।

छुच्छुन्दरीश्रीफलपुष्पचूर्णैरालिप्तगात्रस्य नरस्य दूरात्
।। आघ्राय गन्धद्विरदोऽतिमत्तो मदं त्यजेत्केसरिणो
यथोग्रम् ।।११०।।

छुच्छुंदर और नारियल के पुष्प का चूरा शरीर को लपेटे हुए मनुष्य के शरीर की गंध को सूँघकर मतवाला हाथी भी मद को छोड़ देता है जैसे शेर के शरीर के गंध को सूँघ कर छोड़ता है।।११०।।

श्वेताद्रिकर्णिकामूलं पाणिस्थं वारयेद्गजम् ।
श्वेतकंटारिकामूलं व्याघ्रादीनां भयं हरेत् ।।११।।
पुष्यार्कोत्पाटिते मूले पाठाया मुखसंस्थिते ।
देहं स्फुटति नो तीक्ष्णमंडलाग्रै रणे नृणाम् ।।१२।।
गंधार्या उत्तरं मूलं मुखस्थं सन्मुखागतम् ।
शस्त्रौघं वारयेत्तत्र पुष्यार्के विधिनोद्धृतम् ।।१३।।

विधिरुपवासः

शुभ्रायाः शरपुङ्खया जटा नीलीजटाथवा ।
भुजे शिरसि वक्त्रे वा स्थिता शस्त्रनिवारिका ।।१४।।

भूपाहिचोरभीतिघ्नी गृहीता पुष्यभास्करे ।

सफेद विष्णुक्रान्ता की जड़ हाथ में रखने से हाथी को दूर कर देती है, सफेद कटहली की जड़ व्याघ्रादिकों के भय को हरती है, पुष्यरविवार को पाढ़र की जड़ उखाड़कर मुख में रखे तो देह नहीं फटे, तीव्र तलवार वा चक्रधारा से, गांधारी के उपार की जड़ मुख में होय तो सन्मुख आये हुए शस्त्रों के समूह को हटा देती है। विधि से उपजी हुई हो, उसको उपवास करके लावे, सफेद झोझुरू की जड़ हो अथवा नीली की जटा को, हाथ शिर मुख में रखने से सब शस्त्रों का निवारण करती है। राजा, चोर, साँप के डर का नाश करती है पुष्यार्क में ग्रहण की हुई हो।।११-१४।।

अथ संग्रामविधिः

आदौ तु क्रियते मुद्रा पश्चाद्युद्धं समाचरेत् ।
सर्पमुद्रा कृता येन तस्य सिद्धिर्न संशयः ।।१५।।

अब संग्राम करने की विधि लिखते हैं, आदि में शत्रु की सेना के सन्मुख खड़ा होकर मुद्रा करे, पीछे युद्ध का आरम्भ करे, जिसने पहिले सर्पमुद्रा करी हो उसकी सिद्धि हो इसमें संदेह नहीं।।१५।।

रुद्रं ध्यात्वा मन्त्रं जपेत्

ॐ नमः परमात्मने सर्वशक्तिमते विरूपाक्षाय भालनेत्राय रं हुं फट् स्वाहा । ततो हैमवतीं ध्यात्वा प्रणम्य युद्धमारभेत् ।। ॐ ह्रीं श्रीं हैमवतीश्वरीं ह्रीं स्वाहा ।। ॐ ह्रीं वज्रयोगिन्यै स्वाहा । सिंहासनस्थां रुद्राणीं ध्यायेत् ।।१६।।

रुद्र का ध्यान करके मंत्र जपे, जो पहिले लिख आये हैं। पीछे हैमवती भगवती का ध्यानकर प्रणामकर युद्ध का आरम्भ करे, हैमवती मंत्र उच्चारण करके, फिर वज्र योगिनी का ध्यान करके सिंह पर चढ़ी हुई रुद्राणी को ध्यावे।।१६।।

अपूर्णे शत्रुसामग्री पूर्णे वैश्यबलं तथा ।
कुरुते पूर्णसत्त्वस्थो जयत्येको वसुंधराम् ।।१७।।

अपूर्ण स्वर में शत्रु की सामग्री हो और पूर्ण में अपनी सेना तत्व से पूर्ण करे, स्थित हो, ऐसा एक भी योद्धा सारी वसुधा को जीते।।१७।।

पृष्ठे दक्षे योगिनी राहुयुक्ता यस्यैकोयं शत्रुलक्षं निहन्ति ।। अर्कः पृष्ठे दक्षिणे यस्य गाधे चन्द्रो वामे सम्मुखे वै निशायाम् ।।१८।। वायुं पृष्ठे दक्षिणे यो विदध्याद्योधा शत्रून्नाशेयत्तत्क्षणेन ।।१९।।

जिसके पीछे और दाहिने राहु सहित योगिनी हो वह अकेला लाख शत्रुओं को मारता है, हे विश्वामित्र! और ऐसे ही सूर्य पीछे वा दाहिने हो और रात में चन्द्रमा सामने अथवा बाँये हो और वायु को पीछे वा दाहिने जो करे, वह योद्धा तत्काल शत्रुओं का नाश करे।।१८-१९।।

या नाडी वहते चाङ्गे तस्यामेवाधिदेवता ।
सम्मुखेपि दिशा तेषां सर्वकार्यफलप्रदा ।।१२०।।

जो नाड़ी अंग में बहती हो, उसका अधिदेवता सामने हो, उसकी दिशा के सामने मुख करे तो सब कार्यों की फल देने वाली हो।।१२०।।

यां दिशं वहते वायुर्युद्धं तद्दिशि दापयेत् ।
जयत्येव न सन्देहः शक्रोपि यदि चाग्रतः ।।२१।।

जिस दिशा का वायु देह में चलता हो, उसी दिशा में युद्ध दे तो यदि इन्द्र भी आगे होवे तो भी जीत होय।।२१।।

सूर्ये पूर्वे चोत्तरे च चन्द्रे पश्चिमदक्षिणे ।
सेनापतिबलं त्वेवं प्रेषयेन्नित्यमादरात् ।।२२।।

सूर्य स्वर चलता हो तो पूर्व और उत्तर में यदि चन्द्रमा होय तो पश्चिम दक्षिण में, सेनापति आदर के साथ सेना को युद्ध के लिये भेजे।।२२।।

यत्र नाड्यां वहेद्वायुस्तदंग प्राणमेव च ।
आकृष्य गच्छेत्कर्णान्ते जयत्येव पुरंदरम् ।।२३।।

जिस नाडी में वायु बहता हो, उसी अंग में प्राण होता है उसको कानों तक खैंचकर चले तो इन्द्र को भी जीत ले।।२३।।

प्रतिपक्षप्रहारेभ्यः पूर्णांगे योभिरक्षति ।

न तस्य रिपुभिः शक्तिर्बलिष्ठैरपि हन्यते ॥२४॥

शत्रुओं के प्रहारों से जो पूर्ण अंगों की रक्षा करते हैं उनकी शक्ति को वलवान् शत्रु भी नहीं हनन कर सकते हैं॥२४॥

अगुष्ठतर्जनीवंशे पादाङ्गुष्ठे तथा ध्वनिः ।
युद्धकाले प्रकर्तव्या लक्षयोधजयी भवेत् ॥२५॥

अँगूठा तर्जनी के वाँस में और पैर के अँगूठे में वैसे ही ध्वनि करनी चाहिये ऐसा करने से लाख योद्धाओं को जीतने वाला हो॥२५॥

भूतत्वे ह्युदरं रक्षेत्पादौ रक्षेज्जलेन च ।
ऊरू च वह्नितत्वेन करौ रक्षेच्च वायुना ॥
व्योमतत्वे शिरो रक्षेदेवं योधो जयी भवेत् ॥२६॥

जव पृथ्वी का तत्व हो, तव उदर में चोट लगती है इससे चाहिये कि, जव पृथ्वीतत्व हो तव पेट की रक्षा ढाल आदि से करे, जल के बहने में पादों की रक्षा करे, अग्नितत्व के समय ऊरुओं को वचावे, वायु से हाथों को वचावे, आकाश हो जव शिर की रक्षा करे तो ऐसा योद्धा जीतने वाला होता है॥२६॥

सूर्ये पूर्वे चोत्तरे च मुखं कृत्वा जयेन्नरः ।
चन्द्रे मुखं सदा कुर्याद्दक्षिणे पश्चिमे सुधीः ॥२७॥
चिरयुद्धे शुभश्चन्द्रः शीघ्रयुद्धे रविस्तथा ॥
दूरयुद्धे जयी चन्द्रः समीपस्थे दिवाकरः ॥२८॥

सूर्य में पूर्व और उत्तर दिशा में मुख करके जीते, चन्द्रमा में सदा दक्षिण और पश्चिम में मुख करे तो जीते, बहुत देर तक युद्ध करना हो तो चन्द्रमा का स्वर अच्छा है, और जल्दी करना हो तो सूर्य का और दूर के युद्ध में चन्द्र और समीप के युद्ध में सूर्य जीतने वाला होता है॥२७-२८॥

आकृष्य प्राणपवनं समारोहेत्तु वाहनम् ।
समुत्तरेत्पदं दद्यात्सर्वकार्याणि साधयेत् ॥२९॥

प्राण पवन को खैंचकर सवारी पर चढ़े, अर्थात् कुम्भक करके चढ़े, रेचक करता हुआ उतरे तो सव कामों की सिद्धि करे॥२९॥

न कालो विविधं घोरं न शस्त्रं न च पन्नगाः ।
न शत्रुव्याधिचौराद्याःशून्यस्था नाशितुं क्षमाः ।।१३०।।

न तो काल, न विविध प्रकार के शस्त्र, न साँप, न शत्रु, न शरीर का रोग, न चोर आदि क्रूर स्वभाव वाले शून्य स्वर में स्थित हुए नाश करने को समर्थ हो सकते हैं।।१३०।।

अयनतिथिदिनेशैः स्वीयतत्वेभ्ययुक्तो यदि वहति कदा-
चिद्दैवयोगेन पुंसाम् ।। स जयति रिपुसैन्यं स्तम्भमात्र-
स्वरेण प्रभवति न च विघ्नं केशवस्यापि लोके ।।३१।।

उत्तरायण सूर्य की तिथि और सूर्यस्वर अग्नि तत्व वा वायु तत्व से युक्त होकर कदाचित् दाहिना स्वर अपने आप चले जिस किसी का वह स्वर के स्तम्भ मात्र से ही शत्रु की सेना को जीते और केशव के लोक में भी विघ्न न हो।।३१।।

जीवेन शस्त्रं बध्नीयाज्जीवेनैव विकाशयेत् ।
जीवेन प्रक्षिपेच्छस्त्रं युद्धे जयति सर्वदा ।।३२।।

स्वर से ही शस्त्र बाँधे और स्वर से ही निकाले तथा स्वर से ही फेंके तो युद्ध में सदा जीते।।३२।।

वामनाड्युदये चन्द्रः कर्तव्यो वामसम्मुखः ।
सूर्यचारे तथा सूर्यः पृष्ठे दक्षिणगो जयेत् ।।३३।।

जब बायाँ स्वर चलता हो तब चन्द्रमा बायें वा सम्मुख करना चाहिये, सूर्य के चलते समय सूर्य को वैसे ही पीठ पीछे अथवा दाहिने करे।।३३।।

दीप्ते कार्ये नाडी परदिशि जीविता सदा कुर्यात् ।
शान्ते च जीवसहिता त्वेवं सिद्ध्यन्ति कार्याणि ।।३४।।

क्रूर काम में दूसरे की ओर सदा निर्जीव नाड़ी करे और शान्तकर्म में चलती हुई नाड़ी करे तो कार्य सिद्ध हो।।३४।।

तत्त्वबलान्नाडीबलमधिकं प्रोक्तं कपर्दिना नियतम् ।
ज्ञात्वैनं स्वरचारं नरो भवेत्कार्यनिपुणमतिः ।।३५।।

अब इस शंका को दूर करते हैं, कि तत्वज्ञान तो बड़ा कठिन है, किसी

किसी को होता है तो वशिष्ठजी विश्वामित्र से कहते हैं, कि तत्वबल से नाड़ी बल अधिक है, यह बात श्रीजटाधारी महादेवजी महाराज ने परशुरामजी से निश्चय ही कह दी है, इस स्वर की गति को जानकर मनुष्य अपने कार्य करने में निश्चय ही चतुर बुद्धि होता है।।३५।।

इति स्वरबलयुद्धम्

अथ राहुयुक्तयोगिनीबलयुद्धं व्याख्यास्यामः

न देयमिदं क्रूराय कुबुद्धयेऽशांताय गुरुद्रोह्यभक्तायेति । देयमिदं ब्रह्मचारिणे धर्मतः प्रजापालदुष्टदण्डविधारिणे साधुरक्षकाय इत्येव प्रवचनमिति ।।३६-३७।।

अव राहुयुक्त योगिनी बल युद्ध को कहते हैं यह (बुद्धि) युद्ध प्रकार क्रूरबुद्धि शांति रहित गुरुद्रोही अभक्त को न देना और ब्रह्मचारी जो हो और धर्म से प्रजा का पालन जो करे (दुष्ट) खोटे पुरुषों को जो दण्ड दे (साधु) अच्छे पुरुषों की जो रक्षा करे ऐसे को दे, इतना ही वचन है।।३६-३७।।

राहुयुक्त योगिनीबल

प्रतिपन्नवम्यां प्रथमेर्धयामे राहुयुक्ता योगिनी पूर्वस्यां दिशि स्थिता भवति ।।१।। द्वितीया दशम्यां पञ्चमेर्धयामे राहुसहिता शिवा प्रतीच्यामुदेति ।।२।। तृतीयैकादश्यां तृतीये अर्धयामे तमःसंमिलिता पार्वती याम्यां परिभ्रमति ।।३।। चतुर्थ्यां द्वादश्यां तु सप्तमेऽर्धयामे राहुणा सहनगजा चोत्तरे ज्ञेया ।।४।। पञ्चम्यामथ त्रयोदश्यामष्टमेऽर्धयाम स्वर्भानुयुता गौरी नैर्ऋत्यामटति ।।५।। गुहतिथौ चतुर्दश्यां च कात्यायनी पवनालये चायाति ।।६।। सप्तमीपूर्णिमायां चतुर्थेऽर्धप्रहरे विधुंतुदेन साकं योगिनी मैशान्यां जानीयात् ।।७।। अष्टम्यमायां षष्ठेऽर्द्धयामे

रुद्राणी तमोयुक्ताऽऽग्नेय्यामीक्ष्यते ।।८।। इति राहुयुक्ता योगिनी उपग्राह्या द्वितीयेऽर्द्धयामे सैंहिकेययुता ।।९।।

पड़वा (प्रतिपदा) और नवमी को पहिले आधे प्रहर में राहु सहिता योगिनी पूर्वदिशा में स्थित होती है।।१।। द्वितीया और दशमी पाँचवें आधे प्रहर में राहु के साथ योगिनी पश्चिम में उदय होती है।।२।। तृतीया और एकादशी को तीसरे आधे याम में राहु के साथ योगिनी दक्षिण में घूमती है।।३।। चौथ और द्वादशी के सातवें आधे याम में राहु के साथ योगिनी उत्तर में जाननी।।४।। पञ्चमी और त्रयोदशी के आठवें आधे प्रहर में राहु के साथ योगिनी दूसरे नैर्ऋत्य कोण में रहती है।।५।। षष्ठी और चौदश को राहु के साथ योगिनी दूसरे आधे याम में वायु कोण में चलती है।।६।। सप्तमी और पूर्णिमा में चौथे आधे प्रहर में राहु के साथ योगिनी ईशान कोण में जाननी।।७।। अष्टमी और अमावस को छठे आधे याम में योगिनी राहु के साथ अग्निकोण में दिखाई देती है।।८।। ऐसे राहु के साथ योगिनी ग्रहण करनी चाहिये।।९।।

अथ व्यूहादिभिर्युद्धकथनम्

ये राजपुत्राः सामन्ता आप्ताः सेवकजातयः ।। तान्सर्वानात्मनः पार्श्वे रक्षायै स्थापयेन्नृपः।।३८।।परस्परानुरक्ता ये योधाः शार्ङ्गधनुर्धराः । युद्धज्ञास्तु रथारूढास्ते जयन्ति रणे रिपून् ।।३९।। एकः कापुरुषो दीर्णो दारयेन्महती चमूम् ।। तद्दीर्णमनुदीर्यन्ते योधाः शूरतमा अपि।।१४०।। अतो वै कातरं राजा बले नैव नियोजयेत् । द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ।।४१।।परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ।। यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ।।४२।। अक्षयं लभते लोकं यदि क्लीबं न भाषते । मूर्च्छितं नैव विकलं नाशस्त्रं नान्ययोधिनम् ।।४३।। पलायमानं शरणं गतं चैव न हिंसयेत् ।। भीरुः पलायमानोपि नान्वेष्टव्यो बलीयसा ।।४४।। कदाचिच्छूरतां याति शरणे कृतनिश्चयः ।। संभृत्य महतीं सेनां

चतुंरगां महीपतिः ।।४५।। व्यूहयित्वाऽग्रतः शूरान्स्थापयेज्जयलिप्सया । पृष्ठेन वायवो वांति पृष्ठे भानुर्वयांसि च ।।४६।। अनुप्लवन्ते मेधाश्च यस्य तस्य रणे जयः ।। अपूर्णेनैव मर्तव्यं संपूर्णेनैव जीवनम् ।।४७।। तस्माद्धैर्यं विधायैव हन्तव्या परवाहिनी ।। जिते लक्ष्मीर्मृते स्वर्गः कीर्तिश्च धरणीतले ।। तस्माद्धैर्यं विधायैव हन्तव्या परवाहिनी ।।४८।।

अब व्यूहादि उपायों से युद्ध कथन करते हैं, जो राजपुत्र (सामन्त) अर्थात् जो अपने भाई वेटे हों, तथा अपने अधीन हों यथार्थ वात कहने वाले नौकर उन सभी को राजा अपने पास चारों ओर रखे और जो योद्धा आपस में प्रेम रखते हों, शार्ङ्ग (धनुष) धारण करने वाले, युद्धरीति जानने वाले घोड़ों के सवार, वे संग्राम में शत्रुओं को जीतते हैं एक भी कायर भगेड़ा सेना में हो तो बड़ी भारी सेना को हरवा देता है, उस डराये हुए शूरवीर के योद्धा भी पीछे भाग जाते हैं, इस कारण राजा डरपोक सेनापति वा पदचरादि नौकर सेना में भरती न करे, दो पुरुष सूर्य के लोक से ऊपर जाते हैं, योगयुक्त संन्यासी और जो संग्राम में सम्मुख होकर मरे, जहाँ २ शूरवीर शत्रुओं से घिरा हुआ मारा जाय। वह (अक्षय) स्वर्गलोक को पाता है, यदि चेत् क्लीब वचन अर्थात् हीन वचन न बोले तो जिस शत्रु को मूर्च्छा आ गई हो और घवरा रहा हो, हथियार पास न हो, वा दूसरे से लड़ाई कर रहा हो, भाग निकला हो, शरण में आ गया हो ऐसे को न मारे, डरपोक शत्रु भाग चला हो तो बलवान् उसको ढूँढ़े नहीं, क्योंकि कभी वह शूरता को प्राप्त हो जाय तो संग्राम का निश्चयकर अर्थात् अपना मरना ठानकर वह मार देता है, इस हेतु भागे हुए शत्रु को ढूँढ़ना योग्य नहीं है।। वहुत सी सेना इकट्ठी करके चतुरंगिणी अर्थात् हाथी, रथी, घोड़ों के सवार और पैदल एकत्र करके इनका व्यूह बनाकर सबसे आगे शूरवीरों को रखे जीतने की इच्छा से जिसकी सेना की पीठ पीछे, सतर ३ का वायु चलता हो और पीठ पीछे सूर्य हो, तथा पक्षी पीछे उड़ते हों पीठ पीछे की वर्षा हो

उसकी ही रण में जीत होती है। यदि शत्रुओं को बन्धस्वर में रखे तो न मरे और चलते स्वर को रखे तो मारा जाय, इस हेतु धैर्य करके ही शत्रु की सेना मारनी चाहिये, जीत जाय तो धन मिले,और रण में मारा जाय तो स्वर्ग मिले,पृथिवी पर कीर्ति हो इससे धैर्य करके ही शत्रु की सेना मारनी चाहिये।।३८-४५।।

अधर्मः क्षत्त्रियस्यैष यद्व्याधिमरणं गृहे ।
यदाजौ निधनं याति साऽस्य धर्मः सनातनः ।।४९।।

वसिष्ठजी कहते हैं हे विश्वामित्र! रोगी होकर घर में मरना क्षत्रियों के लिये अधर्म से मरना है जो कि, संग्राम में मरना है वह इसका सनातन धर्म है।।४९।।

अथ व्यूहानाह

युवास्वरे मध्यसेना युद्धं कुर्यादतंद्रिता ।
द्वे सेने पार्श्वयोश्चैका पृष्ठतो रक्षयेत्सदा ।।
एकां विकटसेनां तु दूरस्थां भ्रामयेद्युधि ।।५०।।

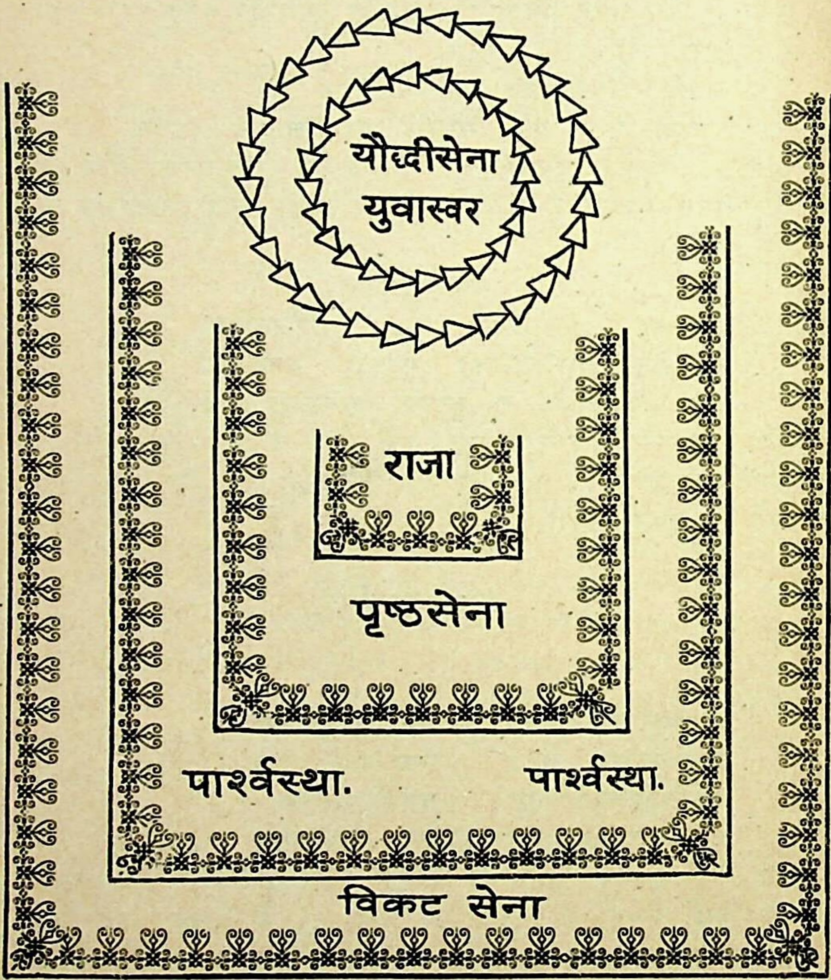
युवा स्वरवाली मध्य सेना घूमती हुई, सामने के शत्रु से युद्ध करे, दो दोनों पछवाड़ों में हों, और एक पीठ पीछे रक्षा करे, और एक विकट सेना दूर घूमती रहे।।५०।।

चित्र आगे देखिये

दण्डव्यूहश्च शकटो वराहो मकरस्तथा ।
सूचीव्यूहोऽथ गरुडः पद्मव्यूहादयो मताः ।।५१।।
एतान्व्यूहान्परिव्यूह्य सेनापतिरयेत्सदा ।
बलाध्यक्षादिकान्सर्वान्सर्वदिक्षु नियोजयेत् ।।५२।।

दण्डाकार दण्डव्यूह गाड़ी के आकार शकटव्यूह सुअर के आकार वराहव्यूह, मच्छी की सदृश मकरव्यूह, सूई के आकार सूचीव्यूह, गरुड़पक्षी जैसा गरुड़व्यूह, कमल के आकार जैसा कमलव्यूह इत्यादि

प्रथमारम्भव्यूह



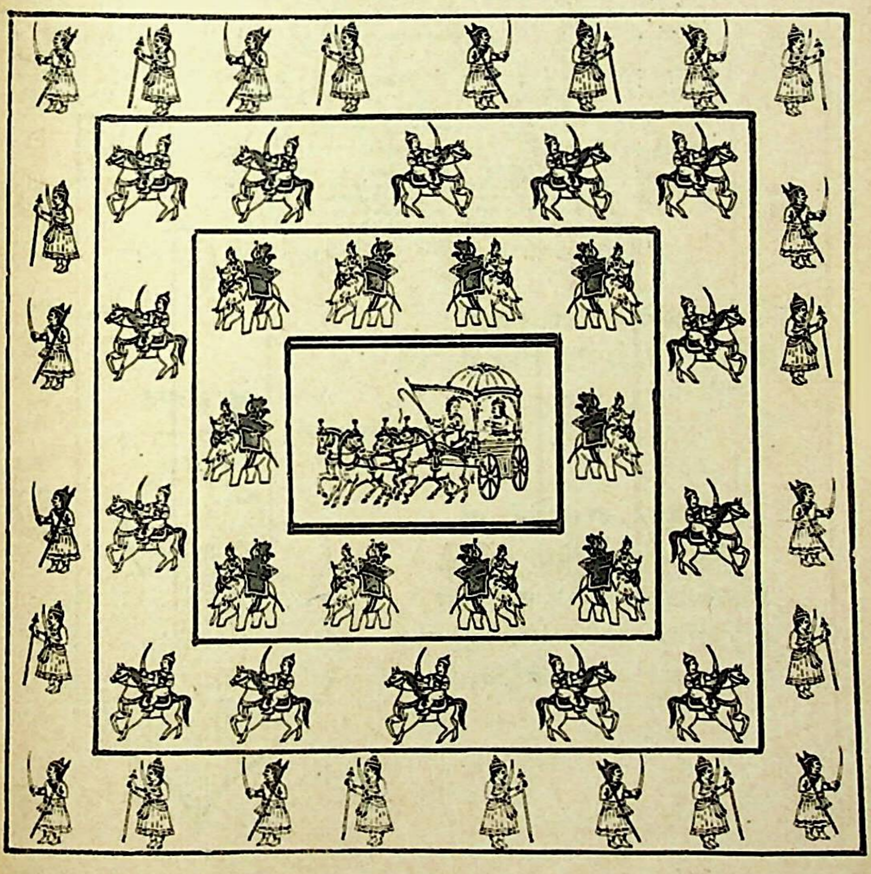
जानने, इतने तथा और और व्यूह बनाकर सेनापति सदा चले, बलाध्यक्षादिकों को सब दिशाओं में नियुक्त करे।।५१।।५२।।

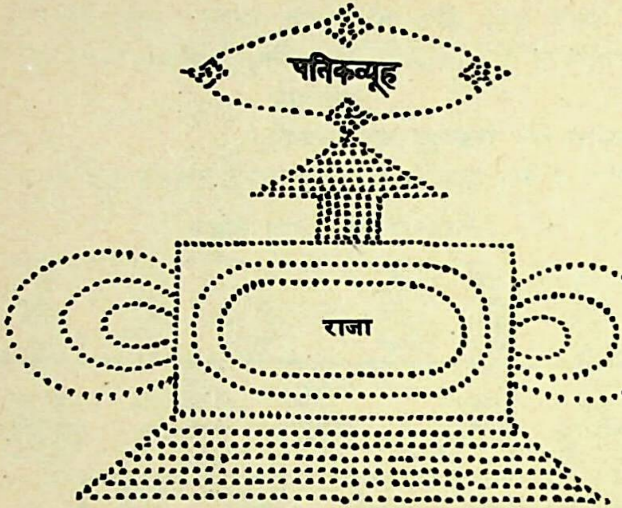
दण्डव्यूह

सर्वतो भये दण्डव्यूहरचना कार्या ।

चारों ओर से जब घिर जावे तब दण्डव्यूह रचकर युद्ध करे।

इनका चित्र आगे देखिये

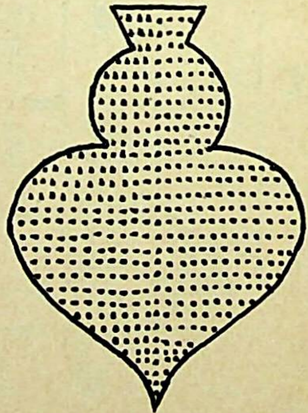




पृष्ठतो भये शकटव्यूहः ।

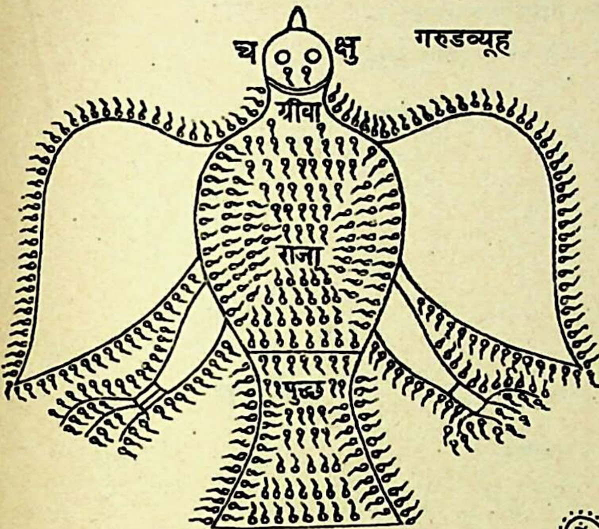
पीछे से भय हो तब शकंटव्यूह रचै ॥

वराहव्यूह

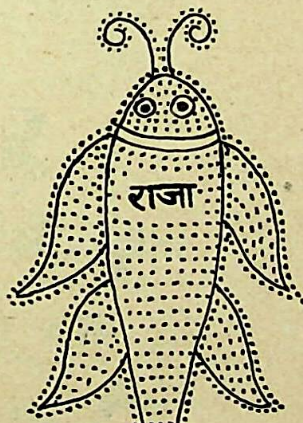


पार्श्वभये वराहव्यूहो वा
गरुडव्यूहो विधेयः ॥५३॥

दाहिनी ओर से और बाईं ओर भय उपस्थित होने पर वराहव्यूह वा गरुडव्यूह करना चाहिये॥५३॥



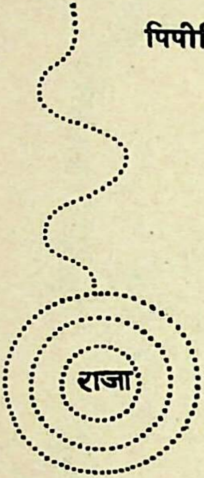
मकरव्यूह



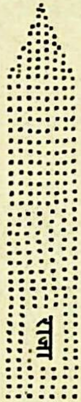
अग्रतो भये पिपीलिकाव्यूहः ।

आगे से भय हो तब पिपीलिका व्यूह रचै ॥

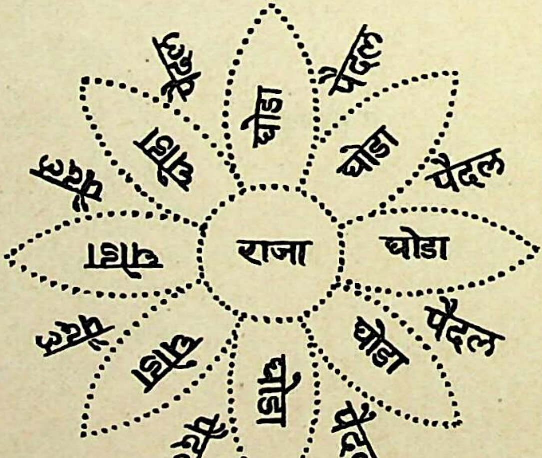
पिपीलिकाव्यूह

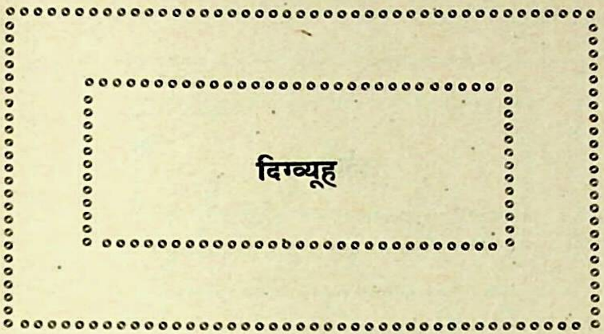


सूचिव्यूह

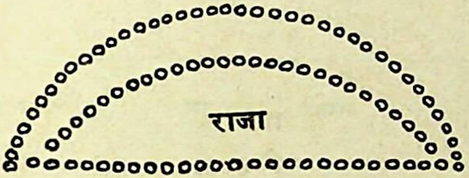


पद्मव्यूह

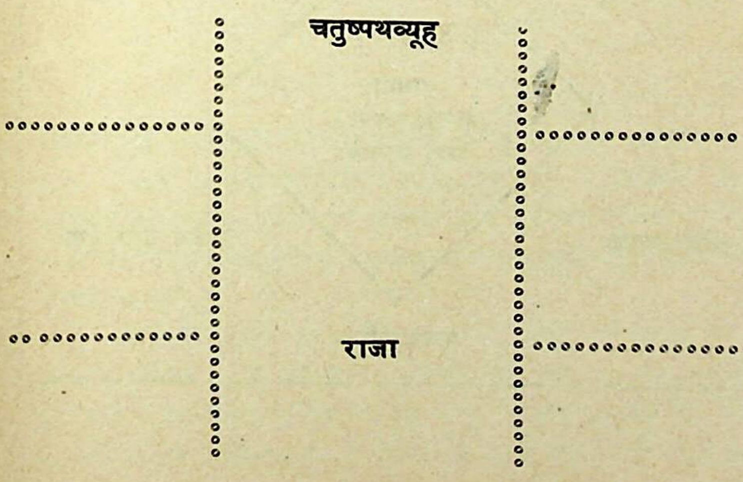




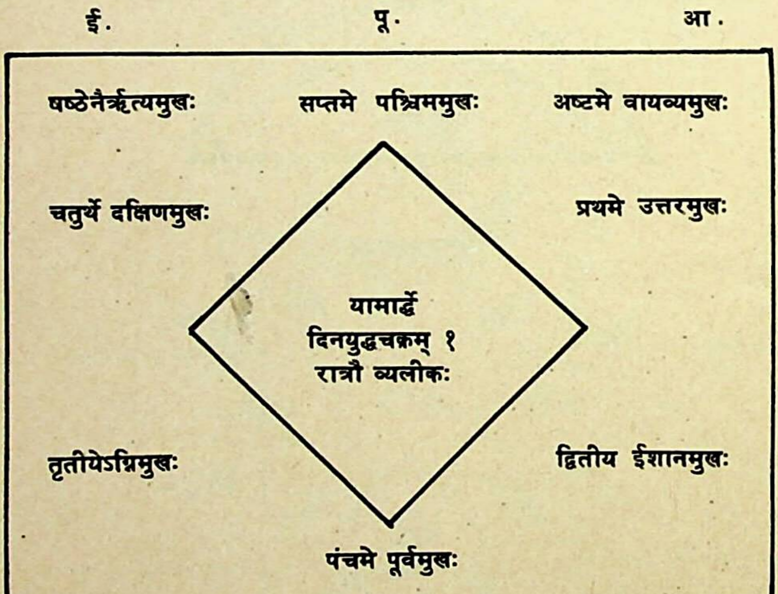
अर्द्धचन्द्र



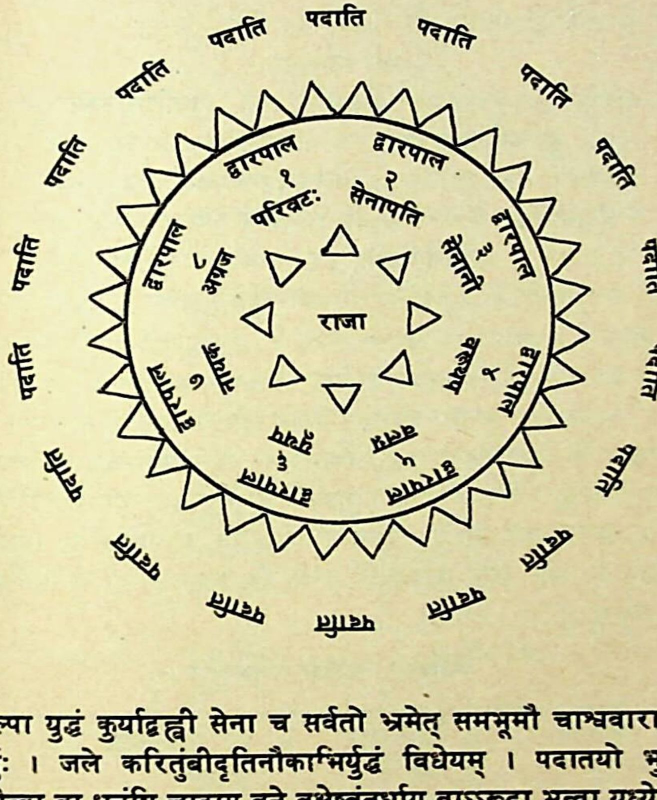
चतुष्पथव्यूह




सर्वतोभद्र


ई.
पू.
आ.
षष्ठेनैर्ऋत्यमुखः
सप्तमे पश्चिममुखः
अष्टमे वायव्यमुखः
चतुर्थे दक्षिणमुखः
प्रथमे उत्तरमुखः
यामार्द्धे
दिनयुद्धचक्रम् १
रात्रौ व्यलीकः
तृतीयेऽग्निमुखः
द्वितीय ईशानमुखः
पंचमे पूर्वमुखः

सेनाशयनव्यूहम्



स्वल्पा युद्धं कुर्याद्वह्वी सेना च सर्वतो भ्रमेत् समभूमौ चाश्ववारा युद्धं कुर्युः । जले करितुंबीदृतिनौकाभिर्युद्धं विधेयम् । पदातयो भुशुंडिं गृहीत्वा वा धनूंषि चादाय वने वृक्षेष्वंतर्धाय वाऽऽरूढा भूत्वा युध्येरन् । स्थले चर्मखड्गभल्लैर्युध्येरन् । युद्धाहंकारिणः स्तुंगा अग्रे स्थाप्या अन्ये पश्चात् ।।५४।।

थोड़ी सी सेना लड़ती रहे, और घनी सेना चारों ओर फिरती रहे, समतल भूमि में सवार लड़ें, जल में हाथी, तूंवी, मसक, नाव पर चढ़कर युद्ध करे, पैदल बंदूक ले लेकर धनुष ले लेकर वन में वृक्षों की आड़ में हों, अथवा उन पर चढ़कर लड़े, और थल ही में जहाँ ऊँची नीची धरती

हो वहाँ ढाल तलवार भाले बरछी आदि से लड़ें, युद्ध के अहंकारियों को सेना के अग्र में स्थापन करे, औरों को पीछे रखे।।५४।।

अथ सेनानयः

तत्रादौ व्याकरणशिक्षां वक्ष्यामो राज्ञे । नृपतिर्लोट्लकारस्य कुर्यात्कंठस्थितानि च । रूपाणि कार्यसिद्ध्यर्थं ह्याज्ञैषा मम गाधिज ।। मध्यमपुरुषस्यैव प्रयोगान्यो विचिन्तयेत् ।।५५।। सेनानीः प्रतिदिनं सम्यङ् न केनापि स हन्यते । मध्यमपुरुषोद्भूताः प्रयोगाः सर्वसिद्धिदाः ।।५६।। तैरेव साधयेदाज्ञां पुरुषा राजभृत्यकाः ।।५७।।

अब सेना के कवायद का प्रकरण कहते हैं, उसके आदि में व्याकरण की शिक्षा को कहते हैं कि राजा के लिये कितना व्याकरण पढ़ना चाहिये, राजा नव लकारों के रूप छोड़कर केवल लोट् लकार के रूपों को कार्य की सिद्धि के लिये कंठ करे, हे विश्वामित्र! मेरी यह आज्ञा है और जो सेनापति लोट् लकार के मध्यम पुरुष के ही रूप याद करे, वह किसी से भी न मारा जाय, मध्यम पुरुष के बहुवचन के प्रयोग ही सिद्धि के देनेवाले हैं। छोटे छोटे ओहदेदार उनसे ही राजा की वा अपनी आज्ञा का पालन करें।।५५-५७।।

अथोदाहरणसहितो धातुरूपपाठः

भू सत्तायाम् भव भवतम् भवत	**पत्लृ पतने** पत पततम् पतत	**डुकृञ करणे** कुरु कुरुतम् कुरुत
चल् चलने चल चलतम् चलत	**चिती संज्ञाने** चेत चेततम् चेतत	**गम्लृ गतौ** गच्छ गच्छतम् गच्छत

ष्ठा गतिनिवृत्तौ तिष्ठ तिष्ठतम् तिष्ठत्	श्रु श्रवणे शृणु शृणुतम् शृणुत	दृशिर् प्रेक्षणे पश्य पश्यतम् पश्यत
दा दाने देहि दत्तम् दत्त	ग्रह उपादाने गृहाण गृह्णीतम् गृह्णीत	पृच्छ ज्ञीप्सायाम् पृच्छ पृच्छतम् पृच्छत
ब्रूञ् व्यक्तायांवाचि ब्रूहि ब्रूतम् ब्रूत	भक्ष भक्षणे भक्षय भक्षयतम् भक्षयत	पा पाने पिब पिबतम् पिबत
इषु इच्छायाम् इच्छ इच्छतम् इच्छत	ज्ञा अवबोधने जानीहि जानीतम् जानीत	आप्लृ व्याप्तौ आप्नुहि आप्नुतम् आप्नुत
कुथि हिंसायाम् कुंथ कुन्थतम् कुन्थत	त्यज त्यागे त्यज त्यजतम् त्यजत	हन् हिंसागत्योः जहि हतम् हत
शासु अनुशिष्टौ शाधि शिष्टम् शिष्ट	इण् गतौ इहि इतम् इत	विद ज्ञाने विद्धि वित्तम् वित्त

अस् भुवि एधि स्तम् स्त	रुधिरावरणे रुन्धि रुन्धम् रुन्ध	शीङ् स्वप्ने शेष्व शयाथाम् शेध्वम्
अज् गतौ क्षेपणेच अज अजतम् अजत	व्रज गतौ व्रज व्रजतम् व्रजत	क्रमु पादविक्षेपे क्राम्य क्राम्यतम् क्राम्यत
दह् भस्मीकरणे दह दहतम् दहत	मिह सेचने मेह मेहतम् मेहत	णीञ् प्रापणे नय नयतम् नयत
गै शब्दे गाय गायतम् गायत	जि जये जय जयतम् जयत	कृष् विलेखने कृष कृषतम् कृषत
मृच्लृ मोक्षणे मुञ्च मुञ्चतम् मुञ्चत	सिंच सिंचने सिञ्च सिञ्चतम् सिञ्चत	कृन्त कर्तने कृन्त कृन्ततम् कृन्तत
क्षिप प्रेरणे क्षिप क्षिपतम् क्षिपत	कॄ विकिरणे किर किरतम् किरत	मिल मिलने मिल मिलतम् मिलत

लिख लिखने लिख लिखतम् लिखत	मनु ज्ञाने मन्यस्व मन्येथाम् मन्यध्वम्	व्यध् वेधने विध्य विध्यतम् विध्यत
रच रचने रचय रचयतम् रचयत	गण संख्याने गणय गणयतम् गणयत	तनु विस्तारे तनु तनुतम् तनुत
भुजपालनाभ्यव- हारयोः भुङ्धि भुङ्क्त	भिदिर् विदारणे भिन्धि भिन्तम् भिन्त	या प्रापणे याहि यातम् यात
अद् भक्षणे अद्धि अत्तम् अत्त	जागृ निद्राक्षये जागृहि जागृतम् जागृत	विश प्रवेशने विश विशतम् विशत

उपसर्गयोगे प्रवेशनार्थं विहायैवं रूपाणि

उपविश
उपविशतम्
उपविशत

इति धातुपाठः

अथैतेषामुदाहरणक्रमः

कोटं वेष्टयत कोटे प्रविशत, कोटमुपरि यात, अश्वानुपर्यारोहत, अश्वांश्चारयत, अश्वान् जलं पाययत्, अश्वपतयो भल्लैनैव बाटिकाभोजनं पाचयत, जलं पिबत, द्विजातयश्चणकान्नं चर्वयत, तथा जलं पिबत, जलाभावे शीतलीकुरुत, अश्वानारुह्य धावत,पदातयः समीकं परवाहिनीं यात,खड्गैः कृन्तत, भल्लैर्विध्यत,रंजकदंशितं दहत,कपाटे कुन्तैस्त्रोटयत, वटिका आयान्ति निपतत, दुष्टान् कुन्थत, डमरुं वादयत, गीतं गायत, वामपार्श्वे अयत, दक्षिणपार्श्वे इत सपदि व्रजत, शनैर्व्रजत, अनुव्रजत, अग्रे व्रजत, तूष्णीं भवत, भीरूँस्त्यजत, शूरान् विध्यत, चर्मणा वटिकां रुन्ध, रंजकं दत्त, उपाऽऽगच्छत, दूरं गच्छत, शेध्वम्, जाग्रत, वस्त्राणि, परिधापयत कटिं बध्नीत, शस्त्राणि धारयत, प्रधनार्थं गच्छत, पदातयोऽग्रे अश्वपतयः पश्चात्, गजारूढास्तदनुः रथिनोन्तिमस्थाः, पदातयस्तिष्ठत समीके, अश्ववाराः प्राच्यामित, गजपाः पश्चिमे चलत ।

धावनप्रकारः

अश्वेषु पल्याणमारोपयत, प्रग्रहम्, प्रतिहत, अंकुशेन हस्तिनं रुन्ध, अश्वेष्वारोहयत,हस्तिपका ध्वजान्गृह्णीत,अश्वपतयो युद्धचत,अनश्वैर्भारं वहत, उष्ट्रभारोद्वहनं विदधत, उष्ट्रपका उष्ट्रान्नयत, अश्वपामेहत, सारथिनः शकटेषु वस्तूनि स्थापयत, वृषभान् योजयत चलत, दाशाः कबंधान् दोलासु क्षिपत, व्रणसहितानपि, सूर्यपृष्ठगाश्चलत, सूर्यदक्षिणगाश्चलत, वायुपृष्ठगाश्चलत, वायुदक्षिणगाश्चलत, चन्द्राभिमुखाश्चलत चन्द्रवामगाश्चलत ॥

अन्यच्च

ऋजवः संप्रयात आलीढम् प्रत्यालीढम् चलत, तिष्ठत प्राङ्मुखाः, प्रत्यङ्मुखाः,अवाङ्मुखाः, उत्तरास्याः, आग्नेय्याम्, वायव्याम्, नैर्ऋत्याम्, ऐशान्याम्, एकस्य प्रत्यक् एको गच्छतु, पूर्ववत्, कमलाकाराः, व्यलीककमलाकाराः, धनुरारोपणम्, तोलनं लस्तकं गृहाण, प्रहारम्, अवहारम्, भुशुण्डीलक्ष्यम् अस्त्राघातं,संहारास्त्रम्,नृपाभिमुखाः प्रणम्य गच्छत, श्वः श्वः शिबिरम्, सन्ध्याकालो जातो युद्धेनालम् ॥१॥

अन्यः

धनुराकाराः, उतिष्ठत, चलत, निपतत, धावत, मारयत, शेध्वम्, भवत, पतत, कुरुत, चेतत, गच्छत, अयत, तिष्ठत, शृणुत, पश्यत, दत्त, गृह्णीत, पृच्छत, ब्रूत, भक्षयत, पिबत, इच्छ, जानीत, आप्नुत, कुन्थत, त्यजत, हत, शिष्ट, इत, वित्त, स्त, दत्त, रुन्ध, अजत, व्रजत, क्राम्यत, दहत, मेहत, नयत, मायत, क्रीडत, जयत, कृषत, मुंचत, सिंचत, कृन्तत, क्षिपत, किरत, मिलत, लिखत, मन्यध्वम्, विध्यत, रचयत, गणयत, तनुत, भुङ्क्त, भिन्त, यात, अत्त, जागृत, रोहत, उपविशत, इति सेनानीपाठः ।।

अथावश्यकाऽव्ययानाम्पाठः

आङ्–मा, नो–आम्, बाढम्, अद्य, सायम्, प्रातः, श्वः ह्यः, परश्वः अन्येद्युः, उभयेद्युः त्वम्, युवाम्, यूयम्, अहम्, आवाम्, वयम्, संज्ञा, सः–तौ–ते अलम्, सपदि, तूर्णम्, उपरि, अधः, अ-प्र-अनु-उप–

पदातिक्रमः

समोच्चा द्विपदा ग्राह्या ह्यसमा न कदाचन ।
कूर्दने धावने ये वै समास्ते कार्यसाधकाः ।।५८।।
पश्चाद्गमनं स्थिरीकरणं शयनं धावनं तथा ।
चलनं परसेनायां पार्श्वदिक्षु च कारयेत् ।।५९।।

ऊँचाई में एक से हों, ऊंचे नीचे न हों, कूदने और भागने में समान जो हों वे कार्यसाधक हैं, इनको पश्चाद्गमन और स्थिरीकरण सिखाना अर्थात् पीछे को हटना और ठहरना, सोना, भागना, शत्रु की सेना में चलना पछवाड़ों में चलना करावे।।५८।।५९।।

षष्ठस्थाने ग्रहा येषां क्रूराः पापाः पतन्ति हि ।। ते युद्धे युद्धचतां वीरानान्ये कार्यकरा यतः ।।६०।। व भ ध ड छ क वर्णा ह्यादिमायां प्रकल्प्य तदनु हि अच अर्णा णादिकाः सर्वलेख्याः । उपरिगत भवांस्तान्स्थाप्य सर्वान्

क्रमेण भवति च युवयस्या युध्यतां सा प्रसेना ।।

जिनके छठे स्थान में क्रूर रवि मंगल और पाप शनि राहु केतु ये पड़े हों वे वीर युद्ध में लड़ें और काम के नहीं होते, अथवा च-व-भ-ड-छ-क ये अक्षर पहिली सेना में लिखे, इसके पीछे स्वरवर्ण अकारादि सब लिखे, ऊपर व्यंजनों के स्वरों को क्रम से स्थापित करे, जिस सेना का युवास्वर हो वही प्रथम होके लड़े।।६०।।

उदाहरणम्

यथा, विवस्वान्, भरत, धुन्धुमार, डित्थ,
छत्रपति, कुक्षि,

इन अक्षरों के नामवाले योधाओं को प्रथम सेना युवास्वर में युद्ध ठाने तो जीते।।१।।

अस्या वस्त्राणि पीतानि ध्वजा पीता च तद्वति ।
युद्धयूपस्तथा पीतश्चतुरस्रांकसंयुतः ।।६१।।

इसके पीले वस्त्र, पीली झंडी-वैसा ही युद्ध यज्ञ का बड़ा झण्डा जहां गाड़ा जाय वहां सेना ठहरे। चौकोर चिह्न का।।६१।।

श्वेतरक्तहरित्कृष्णा चान्या सेना हि त्वादिवत् ।
कर्तव्या पार्थिवैर्नित्यं जयलाभसुखेच्छुभिः ।।६२।।

हे विश्वामित्र! जय और लाभ सुख के वास्ते पहली सेना का जैसे क्रम है उसकी तरह चार सेना चाहनेवाले राजाओं को श्वेत, लाल, हरी और काले रंगवाली करनी चाहिये।।६२।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च चन्द्रसूर्यौ यथाक्रमम् ।
अधीशाः पंचसेनानां विज्ञेयाः शृणु गाधिज ।।६३।।

हे विश्वामित्र! ब्रह्मा १ विष्णु २ रुद्र ३ चन्द्र ४ सूर्य ५ ये पांच देवता पांच सेनाओं के स्वामी हैं।।६३।।

ब्रह्मा रुद्रबले जीयाद्विष्णुश्चन्द्रबले जयेत् ।
रुद्रः सूर्यबलं प्राप्य चन्द्रो ब्रह्मबलं युधि ।।६४।।
सूर्यो विष्णुबलं लब्ध्वा जयेच्चैव न संशयः ।

ब्रह्माजी महादेव का बल पाकर जीतते हैं, विष्णु चन्द्रमा के बल में जीतते हैं और रुद्रजी सूर्य का बल पाकर जीतते हैं, चन्द्रमा ब्रह्मा के बल से युद्ध में जीतते हैं, सूर्यनारायण विष्णु के बल को पाकर जीतते हैं, इसमें संदेह नहीं।।६४।।

अ ब्रह्मा विष्णुरी रुद्र उश्चन्द्रस्त्वे च भास्करः ।
ओ ज्ञेयःपार्थिवैर्नित्यं जन्यशास्त्रविचक्षणैः ।।६५।।

(अ) ब्रह्मा (इ) विष्णु (उ) रुद्र (ए) चन्द्र (ओ) सूर्य, युद्धशास्त्र के चतुर राजाओं ने जानना।।६५।।

प्राप्य स्वं स्वं बलं सेनाः पूर्वोक्ता युद्धगा यदि ।
क्षणाधन अरीन्सर्वान्मारयंतीति रुद्रवाक् ।।६६।।

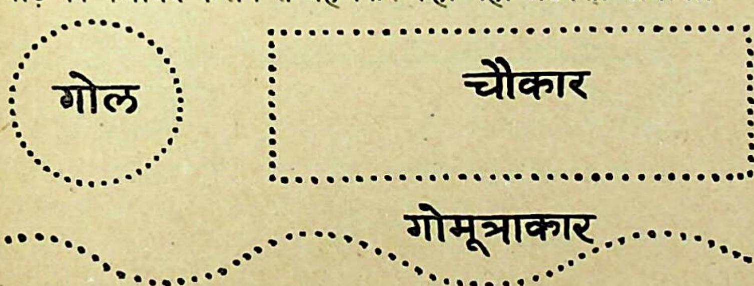
पहिले कही हुई सेना यदि अपना अपना बल पाकर युद्ध को जाय तो आधी आधी क्षण में सब शत्रुओं को मारें यह महादेवजी की वाणी है।।६६।।

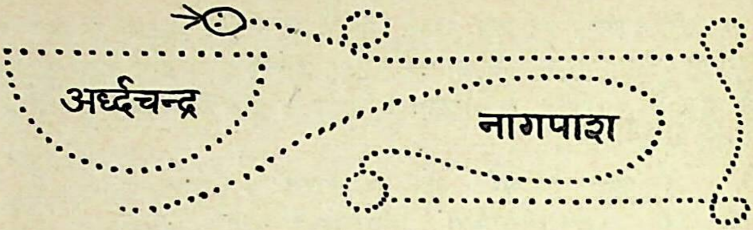
इति पदातिक्रमः

अथाश्वक्रमः

मण्डलं चतुरस्त्रं च गोमूत्रं चार्द्धचन्द्रकम् ।
नागपाशक्रमेणैव भ्रामयेत्कटपंचकम् ।।६७।।

गोलाकार-चौकोर-गोमूत्राकार-अर्धचन्द्राकार और नागपाश क्रम से घोड़े की कवायद कराने से वह फिर कहीं नहीं अटकता भ्रमावे।।





इन पांच गतियों से जो घोड़ों को फिरा लेगा उसका घोड़ा नहीं अटकेगा।।६७।।

इत्यश्वक्रमः

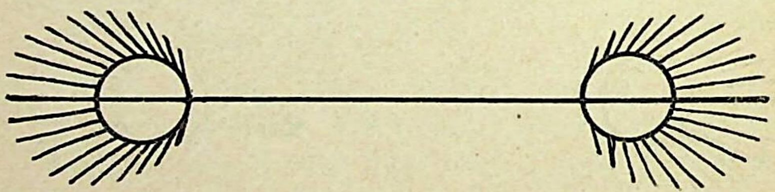
अथ हस्तिक्रमः

(कार्यम्)

गजानां पर्वतारोहणम्, जलेभ्रमणम्, धावनम्, उत्थानम्, उपविशनम्; अलातचक्रादिभिर्भीतिवारणम् कार्यम् ।।६८।।

हाथियों का पहाड़ों पर चढ़ाना, जल में चलना, भागना, उठना, बैठना, अग्निचक्रादिकों से भय दूर करना सिखावे।।६८।।

अलातचक्ररूपम्



इति गजक्रमः

रथः

रथाश्वसाधनं तु समादिस्थले विधेयम् ॥

रथ के घोड़ों को सम आदि स्थल में अभ्यास कराना चाहिये॥

इति रथक्रमः

अथ सेनापतिकरणविधिं वक्ष्यामः ।

शृणु भो राजर्षे विश्वामित्र! आकारविद्याबलयुक्तं क्षत्रियं सेनापतिं विदध्यात् तस्यैते नियमाः समस्त वाहिनीमेकाकारदृष्टयावलोकयेत् अन्यच्च सर्वान्पदातीन् परिश्रमसदृशमधिकारं दद्यात् व्यूहरचनायामतिनिपुणश्च भवेत् स एव सेनानीर्विधेय इति ।

अव सेनापति करने की विधि कहते हैं, सुनो! हे राजऋषि विश्वामित्र! आकारविद्या और बल से जो युक्त हो, ऐसे क्षत्रिय को सेनाध्यक्ष करे, उसके ये नियम हैं, सारी सेना को एकसम दृष्टि से देखे और सब पैदल आदि परिश्रम के सदृश अधिकार (ओहदा) दे, और व्यूहरचना में अतिचतुर हो, उसे ही सेनानी करना चाहिये॥

अथ शिक्षा

तत्रादौ पठनपाठनविधिंब्रूमः । आदौ क्षात्रकोशव्याकरण सूत्राण्यध्येतव्यानि । द्वावध्यायौ सप्तमाष्टमौमनोर्मिताक्षराव्यवहाराध्यायश्च जयार्णवविष्णुयामलविजयाख्यस्वरशास्त्राण्यपराणिच पठितव्यानि ततः सरहस्यं धनुर्वेदमापठेत् ।

अव पठनपाठन की विधि कहते हैं, पहिले क्षात्रकोश व्याकरण सूत्र पढ़ने चाहिये, दो अध्याय सातवां और आठवां मनु का तथा व्यवहाराध्याय मिताक्षरा धर्मशास्त्र, जयार्णव, विष्णुयामल, विजयाख्यतंत्र और स्वरशास्त्र पढ़ने चाहिये, इनको पढ़कर रहस्यसहित धनुर्वेद गुरु से पढ़े।

हन्तव्याऽहन्तव्योपदेशः

सुप्तं प्रसुप्तमुन्मत्तं ह्यकच्छं शस्त्रवर्जितम् ।
बालं स्त्रियं दीनवाक्यं धावन्तं नैव घातयेत् ॥६९॥

अब किसको मारना चाहिये और किसको नहीं, सोये हुए को, गाढ़ निद्रा में सोते हुए को और नशा पिये हुए को जिसका धोती वा लंगोट खुल गया हो उसको, जिसके पास हथियार न होवे उसको तथा बालक अर्थात् बारह वर्ष से कम अवस्थावाले को सज्जन स्त्री को और जो दीन वचन बोले उसको, रण छोड़कर भागते हुए को, धर्मात्मा न मारे॥६९॥

धर्मार्थं यस्त्यजेत्प्राणान्किं तीर्थैश्च जपैश्च किम् ।
मुक्तिभागी भवेत्सो वै निरयं नाधिगच्छति ॥७०॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा स्त्रीणां बालवधेषु च ।
प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥७१॥

इति श्रीमहर्षिवसिष्ठप्रणीता वासिष्ठी धनुर्वेदसंहिता
समाप्ता

हे विश्वामित्र! धर्म के अर्थ जो प्राणों को छोड़े उसको तीर्थ और व्रतों से क्या है, वह स्वर्ग और मोक्ष को पाता है, नरक में नहीं जाता और जो ब्राह्मण गऊ स्त्री बालक इनके लिये प्राण देता है, वह मोक्ष का भागी होता है॥७०॥७१॥

इति श्रीवासिष्ठीधनुर्वेदसंहिता हरितगोत्रोद्भव स्वामि
रामरक्षपालविरचित हिन्दीटीकासमेता
संपूर्णतामयासीत् ॥

कर्मकाण्ड सम्बन्धी हमारे कुछ प्रकाशन

पुस्तके मिलने के स्थान :–

खेमराज श्रीकृष्णदास
श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७वीं खेतवाडी, खम्बाटा लेन,
बम्बई–४०० ००४

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
अहिल्याबाई चौक, कल्याण
(जि० ठाणे–महाराष्ट्र)

खेमराज श्रीकृष्णदास, चौक–वाराणसी (उ० प्र०)

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४

पुस्तके मिलने के स्थान :-

खेमराज श्रीकृष्णदास
श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७वीं खेतवाडी, खम्बाटा लेन,
बम्बई–४०० ००४

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
अहिल्याबाई चौक, कल्याण
(जि० ठाणे–महाराष्ट्र)

खेमराज श्रीकृष्णदास, चौक–वाराणसी (उ० प्र०)

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई-४०० ००४